सिद्धयोग

संस्थापक :
योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 42 / अंक : 10
जनवरी 2010

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

(कठोपनिषद् 2/2/9)

जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट एक ही अग्नि नाना रूपों में उनके समान रूपवाला सा हो रहा है, वैसे ही समस्त प्राणियों का अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपों में उन्हीं के जैसे रूपवाला हो रहा है और उनसे बाहर भी है।

◆ ◆ ◆

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति॥

(मुण्डकोपनिषद 1/2/10)

ईष्ट और पूर्त सकाम कर्मों को ही श्रेष्ठ मानने वाले अत्यन्त मूर्ख लोग उससे भिन्न वास्तविक श्रेय को नहीं जानते, वे पुण्यकर्मों के फलस्वरूप स्वर्ग के उच्चतम स्थान में जाकर श्रेष्ठ कर्मों के फलस्वरूप वहाँ के भोगों का अनुभव करके इस मनुष्य लोक में अथवा इससे भी अत्यन्त हीन योनियों में प्रवेश करते हैं।

◆ ◆ ◆

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टः ततः तेन अमृतत्वम्॥

(श्वेताश्वेतरोपनिषद् 1/6)

इस सबके जीविकारूप सबके आश्रयभूत विस्तृत ब्रह्मचक्र में जीवात्मा को घुमाया जाता है। यह अपने आपको और सबके प्रेरक परमात्मा को अलग–अलग जानकर उसके बाद उस परमात्मा से स्वीकृत होकर अमृत भाव को प्राप्त हो जाता है।

◆ ◆ ◆

नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिक शशीनाम्।
एतानि रूपाणि पुरः सराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/11)

परमात्मा की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले योग में पहले कुहरा, धुँआ, सूर्य, वायु और अग्नि के सदृश तथा जुगनू, बिजली, स्फटिक–मणि और चन्द्रमा के सदृश बहुत से दृश्य योगी के सामने प्रकट होते हैं। ये सब योग की सफलता को स्पष्ट रूप से सूचित करने वाले हैं।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ:– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 42 अंक : 10

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा:
स्वस्ति नः पू सा विश्ववेदा:।
स्वस्तिनस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमि:
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।

परम ऐश्वर्यवान एवं यशस्वी परमेश्वर हमारा कल्याण करे। विश्व का पोषण करने वाला सर्वज्ञ परमेश्वर हमारा कल्याण करे। विघ्न तेजवान एवं समस्त दुःखों का नाश करने वाला परमेश्वर हमारा कल्याण करे तथा बृहस्पति का स्वामी और ज्ञान का भंडार परमेश्वर हमारा कल्याण करे।

जनवरी, 2010

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	12
3.	त्रिपुर–सुन्दी –जनक कुलश्रेष्ठ	14
4.	ब्र. गोपालानद जी महाराज के ध्यानानुभव	17
5.	अनुभव एवं संस्मरण –अवनीश भटनागर	20
6.	एक वयोवृद्ध साधक के ध्यानानुभव	26
7.	हंस योग और वाद –श्री पं. मनोहरलाल शर्मा	29

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 130.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

अनादि महासिद्ध श्रीकृष्ण और उनका योग-ऐश्वर्य

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

जगदात्मा अखिल लोकपावन भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में श्रीमद्भागवत या अन्यान्य पुराणों में उनके परात्पर होने का निर्देश मिलता है। यथा:-

श्री मद्भागवत के उपाख्यान में जिस समय श्री ब्रह्माजी या अन्यान्य सभी देवों को साथ लेकर और गौ-रूपधारणी अश्वमुखी पृथ्वी को साथ लेकर क्षीर सागर पर गये और वहाँ जाकर क्षीरोदशायी भगवान् नारायण की स्तुति करनी आरम्भ की। देवताओं की विनती सुन भगवान् विष्णु ने उनको उत्तर दिया था। उत्तर एक अव्यक्त वाणी के रूप में था जो इस प्रकार है-

गिर समाधौ गगने समीरितां निशाम्यवेधास्त्रिदशानुवाचह।
गां पौरुषीं मे श्रृणुतामरा: पुनर्विधीयतामाशु तथैव माचिरम्।।
पुरैव पुंसाऽवधृतो धराज्वरोभवद्भिरंशैर्य दुषूपजन्यताम्।।
सयावदुर्व्यमिर भोश्वेरेश्वर:। स्वकालशकत्याक्षपयंश्चरेदभुवि।।
वसुदेव गृहे साक्षाद् भगवान पुरुष: पर: जनिष्यते तत्प्रियार्थसम्भवन्तु सुरस्त्रिय:।।

अर्थात् क्षीर सागर पर पुरुष सूक्त के द्वारा भगवान नारायण की स्तुति करने के बाद श्री ब्रह्माजी को अपने हृदयाकाश में समाधि के द्वारा जो भगवान् नारायण की वाणी सुनाई दी थी वह पौरुषी वाणी उन्होंने समाधि से उठ करके देवताओं को सुनाई थी और स्पष्ट शब्दों में यह कहा कि मुझे समाधि में जो भगवान् नारायण की वाणी सुनाई दी है वह मैं तुम्हें बतलाता हूँ और उस वाणी के अनुसार तुम लोग जा करके यदुकुल में जन्म ले लो क्योंकि उस वाणी ने मुझे यह कहा है कि वसुदेव जी के घर में स्वयं भगवान् पर-पुरुष प्रादुर्भूत होंगे और उनके आमोद प्रमोद के लिए देवलोक की देवांगनायें भी भूमण्डल पर जाकर जन्म ले लें। श्रीमद्भागवत के इस प्रकरण से और इसी प्रकार के पुराणों के अन्तर्गत आये हुए अन्यान्य प्रकरणों से श्रीकृष्ण का पर-पुरुष होना अनायास ही सिद्ध हो जाता है, देवकी ने भगवान् के प्रगट होने पर जो स्तुति की वह इस प्रकार है:-

यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्ति लयोदया: भवन्तिकिल विश्वात्मंस्तंत्वांद्याहं गतिं गता।।

अर्थात् हे प्रभो! जिसके अंशाअंश को धारण करके ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि प्रमुख देव सृष्टि का पालन पोषण व संहार करते हैं उस सबके आधार आप ही हैं। इसी प्रकार से ब्रह्म स्तुति में इन्द्र के द्वारा की गई स्तुति में श्रीमद्भागवत में और अन्यान्य पुराणों में भी श्रीकृष्ण का वर्णन पर–पुरुष के रूप में किया गया है इसलिए वह अनादि काल से ही रहने वाले महासिद्ध हैं इसमें कोई संशय की बात नहीं। जहाँ पर योग–दर्शन में भगवान पतंजलि देव ने ईश्वर का लक्षण–

क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।।

कहकर किया है वहाँ पर यह बिल्कुल स्पष्ट लिख दिया है। श्री भगवान व्यासदेव जी भाष्य करते हुए लिखते हैं–

यथा मुक्तस्य पूर्वा बन्धकोटिः प्रज्ञायते नैवमीश्वरस्य, यथा वा प्रकृतिलीनस्योत्तरा बन्धकोटिः सम्भाव्यते–नैवमीश्वरस्य, सतु सदैव मुक्तः सदैवेश्वरः इतिः।

अर्थात् जो लोग तीन बन्धनों को काट कर मुक्ति को प्राप्त होते हैं वे पहले बन्धन में हैं और जो योगी लोग प्रकृतिलीन हैं और अपने आपको कैवल्य पद में विलीन समझ रहे हैं वे बाद में पुनः बन्धकोटि के अन्दर आ जायेंगे किंतु ये सारे के सारे ईश्वर के साथ बिल्कुल नहीं होते। इसलिए वह ईश्वर हमेशा ही मुक्त है और हमेशा ही ईश्वर है। उसका ऐश्वर्य, साम्यातस्थ विनिर्मुक्त है। अतः अखिल आत्मा भगवान् श्रीकृष्ण का ऐश्वर्य भी साम्यातस्थ विनिर्मुक्त है। इसलिए उनका आदि महासिद्ध होना अनायास ही सिद्ध है। भगवान् श्रीकृष्ण को लीलावतार कहते हैं किंतु उनके जीवन में घटित होने वाली घटनायें उनको एक सरल ऐश्वर्य सम्पन्न योगीराज का ही अवतार सिद्ध करती है। जन्म से लेकर स्वधामगमन तक उनकी जितनी भी लीलायें हुई हैं उन सभी में से एक–एक से योग टपकता है। उनका कारावास में जन्म लेना और जन्म भी एक अद्भुत जन्म जिस प्रकार संसार में कोई बालक जन्म नहीं लिया करता उसके अतिरिक्त विलक्षण ढंग से अपनी माता के सामने अपने दिव्य चतुर्भुज रूप से प्रगट होना जैसा कि श्रीमद्भागवत् में लिखा है :–

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं। चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम्।।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभ। पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्।।
महार्हवैदूर्यकिरीट कुण्डल। त्विषा परिष्वक्तसहस्त्र कुन्तलम्।।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकंङ्कणादिभि– विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत।।

अर्थात् वसुदेवजी ने देखा कि उनके सामने किरीट, कुण्डल एवं वरमाला धारण किये हुए मेघ वर्ण सुन्दर श्याम शरीर वाला और अपनी चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए एक सुन्दर बालक खड़ा है। इसी प्रकार से देवकी ने उनके रूप को देखा और

उस अद्भुत रूप को देखकर उस महायोगीराज के उस तेज को सहन न कर सकी और उसने विनम्र भाव से प्रार्थना की कि हे प्रभो – इस धारणा ध्यान के लिए मंगलमय जो आपके दिव्य चतुर्भुज स्वरूप हैं वह हम हाड़–माँस चमड़े के शरीर धारण करने वाले साधारण मनुष्य लोक के जीव इसके अधिकारी नहीं है। इस समय आपने मेरे ऊपर से जन्म लेने का अभिनय किया है, इसलिए अपने इस अलौकिक दिव्य रूप तेज को छिपाकर साधारण मनुष्य रूप में मेरे सामने प्रगट होइये। अपनी माता देवकी को इस प्रकार भयभीत देखकर अपने उस दिव्य चतुर्भुज रूप से अन्तर्हित होकर उसके सामने अपनी योगमाया से बालक रूप में प्रगट हो गये। इस प्रकार अपने अद्भुत दिव्य चतुर्भुज रूप का माता के सामने प्रगट करना और फिर उसको छिपा लेना ये उनकी स्वाभाविक योग शक्ति का अद्भुत प्रभाव था। किंतु एक साधक सिद्ध योगी के लिए ये क्रिया अपनी साधना के बल पर आधारित है और उसको संयम के द्वारा ही ऐसा करना पड़ेगा। किंतु आदि महासिद्ध श्रीकृष्ण के लिए यह न के बराबर सहज कर्म था।

पतंजलि योग दर्शन एवं अन्तर्ध्यान क्रिया

भगवान् पतंजलि देव अपने योग सूत्र में बतलाते हैं –

कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्य शक्ति स्तम्भे चक्षुः प्रकाशासंप्रयोगेऽन्तर्धानम्।।

अर्थात् जिस समय योगी अपने संयम के बल से काया के रूप में अपने मन को संयमित करता है उस समय उसके शरीर पर सर्वसाधारण की आँखों का प्रभाव नहीं पड़ सकता, चक्षुः प्रकाशासंयोग होने के कारण वह अपने आपको छिपा लेता है। ये साधना साधन सिद्ध योगी को अपने योग–सिद्ध ऐश्वर्य के बल पर संयम के बल से करनी पड़ेगी। किंतु महायोगी ईश्वर सिद्धों के महासिद्ध श्रीकृष्ण के लिए यह अद्भुत कर्म कुछ भी अर्थ नहीं रखता। उन्होंने अपने माता–पिता के सामने अपने दिव्य चतुर्भुज तेजोमय स्वरूप को प्रगट करके दिखला भी दिया और तत्काल उनकी विनय करने पर अपने उस दिव्य रूप को छिपा भी लिया और तत्काल ही सहजकाय निर्माण शक्ति से अपने आपको बालक रूप में प्रगट भी कर दिया। यह उन महायोगेश्वर की योग ऐश्वर्य की पहली झलक थी जो देवकी वसुदेव ने अपनी आँखों से देखी। इसके बाद उन्होंने अपने योग बल से बाल–लीला आरम्भ की जिस कथा–प्रसंग को प्रायः सभी कृष्ण भक्त सब जानते ही हैं।

योगेश्वर श्रीकृष्ण का सहज शुभ संकल्प

कंस के कारागार से श्री वसुदेव जी भगवान् बालरूप श्रीकृष्ण को गोकुल पहुँचा आये थे। कंस के कारागार के दरवाजों का अपने आप खुल जाना और वसुदेव के लौट आने पर पुनः उसी प्रकार से बन्द हो जाना यह उनके स्वाभाविक शक्ति संकल्प का ही परिणाम था। उनके लिए यह कोई कठिन कार्य नहीं था। केवल मात्र संकल्प में आना ही उन सब कामों का जनक था।

साधन–सिद्धों की संकल्प सिद्धि का साधन

एक साधक योगी को जन्म–जन्मान्तरों के सत्य को धारण करने की यह सिद्धि प्राप्त होती है योग दर्शन हमें बतलाता है–

सत्य प्रतिष्ठायां क्रिया फलाश्रयत्वम्।

अर्थात् सत्य प्रतिष्ठ योगी की वाणी क्रिया फल वाली हो जाया करती है और ज्योंही मनुष्य बाह्य रूप से सत्य की साधना करता हुआ समाधि के द्वारा ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त करता है तो वह सत्य संकल्प हो जाता है। उसको अनायास ही सिद्धि प्राप्त रहा करती है। ऋतम्भरा प्रज्ञा का अर्थ ऋत, सत्यं, विमर्ति या ऋतम्भरा। अर्थात् जिस योगी की बुद्धि सत्य को धारण करती है वह ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त योगी जो भी मन में संकल्प करता है, प्रकृति उसको स्वीकार कर लेती है और उसके संकल्पित कार्य अनायास ही होने लग जाया करते है। यह साधारण मनुष्य अपने साधन के बल से प्राप्त कर पाता है किंतु अनादि महासिद्ध श्रीकृष्ण के लिए यह कोई भी बड़ी बात नहीं थी। वे स्वयं सत्य स्वरुप है। श्री मद्भागवत के दसवें स्कन्ध के दूसरे अध्याय में जहाँ पर गर्भ स्तुति की गई है वहाँ पर ब्रह्माजी ने उनकी स्तुति करते हुए उनको सत्यात्मक कहा है–

सत्य व्रतं सत्य परं त्रिसत्यं। सत्यस्य योनिनिहितं च सत्ये।।

सत्यस्य सत्यमृत सत्यनेत्रं। सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः।।

अर्थात् ब्रह्माजी करबद्ध स्तुति करते हुए उससे प्रार्थना करते है कि सदा सर्वथा सत्य रहने वाले सत्य परायण सत्यात्मक हम आपकी शरण में होते हैं। इसलिए सत्य संकल्प अनादि महासिद्ध श्रीकृष्ण के लिए कारागार के दरवाजों का खुल जाना और उनके लौट आने पर फिर बन्द हो जाना एक बहुत साधारण कर्म था किंतु यह शक्ति साधक योगी के लिए बड़ी कठिन साधना के बाद प्राप्य है। इसके बाद भगवान् की गोकुल लीलायें आरम्भ होती हैं। नन्दरायजी ने उनका जन्मोत्सव मनाया। गीत, वाद्य आदि के सब उपक्रम हुए और उसके बाद भी जिस समय नन्दरायजी कंस को वार्षिक कर देने के लिए गये हुए थे उसी सुअवसर को पाकर पूतना सुन्दर रूप धारण कर गोकुल में आ गई। और घूम–घाम करके नन्द के घर में पहुँची और अनायास ही बालक रूप में छिपे उस परम योगेश्वर को अपनी गोद में लेकर अपने विषमय स्तनों का पान कराया किंतु परिणाम कुछ भी नहीं निकला प्रत्युत श्रीकृष्ण के शरीर पर असह्य विष का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और जैसे के तैसे अपने दिव्य स्वरुप में अमर रहे और खेलते रहे। इसके विपरीत पूतना के प्राण पखेरू उड़ गये एवं श्रीकृष्ण के संकल्प से उसने सद्गति पायी। यह उस अनादि महासिद्ध की सहज वसिता थी जिसमें पंच महाभूतों पर पूर्णाधिकार था जिसमें उनके किसी प्रकार की कोई साधना करने की आवश्यकता नहीं पड़ी, क्योंकि यह उनका सदैव ईश्वरः सदैव मुक्तः कथनानुसार सहज ही है। यद्यपि साधन करने

वाला योगी साधन सिद्धता को पाकर इस शक्ति को प्राप्त कर लेता है किंतु ये उनकी साधन सिद्धता है और अनादि महासिद्धि श्रीकृष्ण का यह सहज वशिकार है। हमें योगदर्शन बतलाता है–

परमाणु परम महत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः।।

अर्थात् योगी का संयम बल इतना बढ़ जाता है कि वह चाहे परमाणुओं से लेकर परम महत्व अर्थात् मूल प्रकृति पर्यन्त पूर्ण वशीकार रहता है। जहाँ भी जिस वस्तु में अपने को संयमित करता है उस तत्व को जान लेता है और उस पर वह अधिकार प्राप्त कर लेता है। इसी बल के आधार पर भूतजय की शक्ति को प्राप्त करता है।

योगी का भूतजय एवं अणिमादिक की प्राप्ति

एक साधक योगी पंच महाभूतों पर अधिकार प्राप्त करने के लिए संयम करता है और उनका साक्षात्कार करता है। बाद में कठिन प्रयास के बाद वह भूतजय की सिद्धि को प्राप्त करता है और अणिमादि का अधिकारी बनता है। योग–दर्शन में भगवान् पतंजलि देव लिखते है–

स्थूल स्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थवत्त्व संयमाद्भूतजयः।

अर्थात् योग दर्शन में पाँच भूत माने है।

1. स्थूल, 2. स्वरूप, 3. सूक्ष्म, 4. अन्वय 5. अर्थवत्व। वह इस प्रकार है –

1. स्थूल– पंच महाभूतों का स्थूल स्वरूप इस प्रकार है जैसे पृथ्वी का पृथ्वी ही स्थूल रूप है और जल का जल ही स्थूल रूप है, वायु का वायु और आकाश का खाली पोल। यही इन पंच महाभूतो में स्थूल रूप है जो स्वरूप हर व्यक्ति को देखने में आते हैं।

2. स्वरूप– दूसरा रूप उनका स्वरूप है। उदाहरण के लिए जैसे पृथ्वी में गन्ध, जल में चिकनाहट, अग्नि में गर्मी, वायु में कम्पन और आकाश में पोल। ये इन पंच महाभूतों का स्वरूप है।

3. सूक्ष्म– तीसरा रूप सूक्ष्म है जिनको तन्मात्र कहा जाता है, जैसे पृथ्वी का तन्मात्र गन्ध, जल का रस तन्मात्र अग्नि का रूप तन्मात्र, वायु का स्पर्श तन्मात्र यह पंच महाभूतों का तीसरा रूप है।

4. अन्वय– चौथा रूप अन्वय है। अन्वय का अर्थ ओत–प्रोत रहना, जैसे सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीनों गुण अपने प्रकाश, प्रवृत्ति और स्थिति वाले धर्मो से सर्वत्र अनुगत रहते है यही पंच महाभूतों का अन्वय रूप है।

5. अर्थवत्व– अर्थात् इनका अर्थवान् होना, इनसे कोई उपकार हो, लाभ हो, सो ये पाँचो महाभूत भोग अपवर्ग के दाता हैं। महाभूत के सम्मिश्रण से ही मनुष्य भोग का भोक्ता है।

इसलिए नित्य चेतन आत्मा बौद्धेय धर्मों का अनुगामी होकर पंच महाभूतों में जनित सभी प्रकार के दृश्यात्मक भोगों का भोक्ता रहता है। दृश्य का दूसरा कार्य अपवर्ग है जिस समय जीव वैराग्य भाव को प्राप्त होकर बराबर सूक्ष्मतर और उसकी सूक्ष्मतम तत्वों में संयम करता हुआ आगे बढ़ता रहता है वह अपवर्ग को प्राप्त कर लेता है। भूतों के इन भिन्न पाँच रूपों में जब तक योगी साक्षात् पर्यन्त बराबर संयम करता रहता है तो उसके फलस्वरूप वह भूत जय को प्राप्त होता है। और भूत जय कर लेने पर –

ततोऽणिमादिप्रादुर्भाव: काय संपत्तद्धर्मानभिघातश्च।।

अर्थात पंच भूतों पर विजय प्राप्त कर लेने पर अणिमादिक सिद्धियाँ योगी को अनायास ही प्राप्त हो जाया करती हैं। इस सूत्र के भाष्य में भगवान व्यास देवजी लिखते हैं–

तत्राणिमा=भवत्यणु:, लघिमा=लघुर्भवति, महिमा=महान भवति प्राप्ति=अंगल्यग्रेणपि स्पृशति चन्द्रमसम्, प्राकम्यम्=इच्छाऽनभिघातो भूमावुन्मज्जति निमज्जति यथोदके वशित्वम=भूत भौतिकेषु वशी भवति: अवश्यश्चान्येषाम्, ईशितृत्वं=तेषाम्प्रभवाप्ययव्यूहानामीष्टे, यत्र कामावसायित्वं=सत्य संकल्पता यथा संकल्पस्तथा भूतप्रकृतीनामवस्थान।

अर्थात् भूत जय प्राप्त कर लेने पर योगी को अणिमादिक सिद्धियाँ जो अनायास प्राप्त हो जाती हैं।

1. अणिमा :– भवत्यणु – अणुमात्र हो जाना।

2. लघिमा :– लघुर्भवति – हल्का हो जाना।

3. महिमा :– महान भवति – बड़ा हो जाना।

4. प्राप्ति :– अङ्गुल्यग्रेणपिस्पृशति – अंगुली के अगले भाग से चन्द्रमा को छू लेने की ताकत होना।

5. प्राकाम्य :– इच्छाऽनभिघातो भूमावुन्मज्जति – किसी भी प्रकार की इच्छा का न रखना, पूर्ण हो जाना, चाहे तो योगी जिस प्रकार सर्व साधारण मनुष्य जल में गोता लगा लिया करते हैं और बाहर निकल आया करते हैं इसी प्रकार पृथ्वी में प्रवेश कर बाहर निकल आये।

6. वशित्वम् :– भूतभौतिकेषुवशीभवति – अर्थात् पंच महाभूतों से रहने वाले सभी पदार्थों पर उस योगी का पूर्ण वशीकार होता है और वह स्वयं किसी के वश में नहीं रहता।

7. ईशतत्व :– तेषाम्प्रभवोप्ययव्यूहानामीष्टे – अर्थात् पंच महाभूतों के भौतिक कार्यों को बनाने और बिगाड़ने की सामर्थ्य रखना।

8. यत्रकामावसायत्वम: :– सत्य सङ्कल्पस्तथा – अर्थात् सत्य संकल्पता जैसे योगी की इच्छा होती है पंच महाभूतों का उस प्रकार अवस्थान हो जाता है और इन महा सिद्धियों को

पाकर योगी सर्व सामर्थ्यवान बन जाता है। महाभूतों का कोई भी कार्य उसके प्रतिकूल नहीं करता प्रत्युत उसको काय सम्पत्त और प्रगट हो जाती है। कायसम्पत्ति का भगवान् पतंजलि देव ने इस प्रकार कहा है–

रूप लावण्य बलवज्र संहननत्वानि काय संपत्।

अर्थात् रूप=अत्यन्त रूपवान कान्तिवान वज्र के समान दृढ़ और सब प्रकार अच्छेद्य शरीर वाला हो गया है। सब प्रकार से शरीर की अच्छेद्यता, अभेद्यता को प्राप्त रहना यह योगी की कायसम्पत्ति है। जो भूतजय प्राप्त होने पर स्वभाव से ही बनी रहती है। साधक सिद्ध योगी को जीवन भर की कठिन साधना के बाद भूत जयता प्राप्त होती है। तब उसके ऊपर भूतों के दुष्परिणाम नहीं हो पाते। भूतजय योगी विषपान करके उसको सहज में ही पचा जाता है और अमृत के गुणों को अपने अन्दर प्रगट कर लेता है। साधना करने वाले योगी को ये सम्पत्ति बड़े कठिन प्रयत्न के बाद प्राप्त हुआ करती है किंतु अनादि महासिद्ध सदैव ईश्वर: सदैव मुक्त: के स्वरूप को धारण करने वाले अनादि महासिद्ध सर्वत: परिपूरितम श्रीकृष्ण के लिए यह भूत जय आदि ऐश्वर्य अनायास ही प्राप्त है। अत: पूतना के स्तनों से विषपान करने पर भी शरीर में किसी प्रकार का कुप्रभाव न हो करके उसकी काय सम्पत्ति को ज्यों का त्यों बने रहना उस महायोगी के भूत जयात्मक पूर्णाधिकार को पूर्णरूपेण प्रगट करती है।

इससे आगे श्रीमद्भागवत में सकट भंजन जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण अपने पलने में सो रहे थे। कुछ समय बाद उनकी आँख खुली वह भूख के कारण दूध पीने की इच्छा रखते हुए रोने लगे। काफी समय तक माता यशोदा उन्हें देख नहीं पायी। माता की इस उपेक्षा के कारण भगवान ने थोड़ा–सा कोप का अभिनय किया और पास में खड़े हुए एक बड़े भारी सकट अर्थात् बैलगाड़ी को बल से पैर मार कर तोड़ डाला। उस पर काफी दही दूध रखा था वह बर्तन भाण्डों के टूट जाने के कारण पृथ्वी पर फैल गया। सभी बृजवासियों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतनी भारी गाड़ी सहसा कैसे टूट गयी। भगवान् श्रीकृष्ण के बालसखा छोटे–छोटे बच्चे अपनी तोतली जबान से नन्द बाबा और यशोदा माता को बतलाने लगे कि तुम्हारे लाला इस कन्हैया ने गुस्से में आकर पैर मारकर इस गाड़ी को तोड़ दिया है। सभी बूढ़े–बड़ों के मन में पूरा–पूरा विश्वास नहीं हो पाया क्योंकि श्रीकृष्ण जो अभी बिल्कुल छोटे बच्चे थे। अभी तो उन्होंने करवट बदलना ही सीखा था। उनके पैर मारने से सकट का टूट जाना असम्भव–सी बात थी। किंतु बालों के भण्डार अखिल आत्मा श्रीकृष्ण के लिए ये सब खेल जैसी बात थी। उन्होंने अपनी इस अल्पायु–सी अवस्था में ही सकट को पैर मार कर अपने अतुल बल का परिचय दे दिया। यह उनका बिना किसी साधना के सहज ऐश्वर्य था। दूसरे योगी इस बल को बड़ी भारी कठिन साधना के द्वारा प्राप्त किया करते हैं तब इतने बन पाते हैं।

बल प्राप्ति का अमोघ साधन

योग दर्शन में भगवान् पतंजलि देव अपने शरीर में अतुल बल बढ़ाने का एक अमोघ साधन बतलाते हैं। साधक योगी पहले ब्रह्मचर्य व्रत आदि का पूर्ण रूपेण पालन करके वह बाद में धारणा, ध्यान, समाधि का निरन्तर अभ्यास करके संयम सिद्धि को प्राप्त करे तब वह अपनी साधना के बल पर अपने शरीर में हाथियों के बलों को उत्पन्न कर सकता है। चीते जैसी स्फूर्ति ला सकता है, बशर्ते उसने अपनी साधना को लगातार निरन्तर एवं आदरपूर्वक दृढ़ता से अभ्यास करके कठिनता से प्राप्त कर पाया हो। भगवान् पतंजलि देव बतलाते हैं–

बलेषु हस्तिबलादीनि।

यदि योगी बलों के अन्दर संयम करता है तो उसके अन्दर तत्काल हाथी के समान बल बढ़ जाता है। एवं उसका शरीर वज्र के मानिन्द दृढ़ हो जाता है। उसके लिए सकट को तोड़ देना न कुछ के बराबर कार्य है। किंतु साधन सिद्धों के लिए यह कार्य उनकी अपनी साधना के बल पर होता है और अनादि काल से स्वतः सिद्ध रहने वाले महान् आत्मा श्रीकृष्ण के लिए यह अनायास सहज कर्म था जो उनके ईक्षण मात्र से स्वतः हो गया।

तृणावर्त का वध एवं लघिमा और गरिमा का प्रयोग

भगवान् के इससे आगे के चरित्रों के अन्दर तृणावर्त राक्षस की कथा है। यह तृणावर्त बात रूपधारी कंस का एक नौकर था जिसने जंजावात का रूप धारण कर गोकुल में बड़ा भारी तूफान मचा दिया। सम्पूर्ण गोकुल गाँव ब्रज रज से भर गया। उस झंझावात में एक दूसरे के शरीर नहीं दिखाई देते थे। महाअन्धकार छा गया था। माता यशोदा ने अपने बाल गोविन्द को एक ओर जमीन पर बिठा दिया था। राक्षस तृणावर्त का दाव लग गया और उनको उठा कर आकाश में ले गया। तृणावर्त के मनोभाव जान कर भगवान् ने अपने आपको रूई के मानिन्द हल्का बना लिया और उसके वेग के साथ–साथ आकाश में चले गये और तृणावर्त के गले को पकड़े बालक के वेश में छिपे हुए उस दिव्य तेज ने आकाश में पहुँच कर और अपने हाथों में तृणावर्त के गले को पकड़ कर गरिमा के प्रयोग से अपने आपको इतना भारी बना लिया कि श्रीमद्भागवत में व्यास देव जी को यह शब्द कहने पड़े–

तमश्मानं मन्यमानआत्मो गुरुमत्तया।
गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्रोदद्भुतार्मकम्॥

अर्थात् उस तृणावर्त राक्षस ने भगवान श्रीकृष्ण को पत्थर के मानिन्द भारी समझा। भगवान् ने उसके गले को पकड़ रखा था। भारी प्रयत्न करने पर भी वह अपना गला नहीं छुड़ा सका और अन्त में उसको मृत्यु के मुख में जाना ही पड़ा। जगदात्मा की ये सारी लीलायें योग से ही सम्बन्ध रखने वाली हैं। अन्य जितने अवतार हुए उनमें से किसी ने भी कहीं पर इतने विशेष ऐश्वर्य का प्रदर्शन नहीं किया कि उसके चरित्रों से यौगिक ऐश्वर्य झलक पड़े। भगवान् श्रीकृष्ण का सारा लीला चरित्र योगऐश्वर्य से परिपूर्ण है किंतु ये सबके सब कार्य उनमें

संकल्प मात्र के थे और यही सब उनकी अनादि काल से चलने वाली सिद्धता है। इस छोटे से लेख में उन जगवाला के अलौकिक योग ऐश्वर्य को यत्किंचित दिखलाने का प्रयत्न किया है। मैं समझता हूँ इन चरित्रों के पढ़ने से हर साधक को योग की उत्कृष्टता का ज्ञान अवश्य हो जायेगा। भगवान् श्रीकृष्ण स्वतः सिद्ध थे किंतु उन्होंने अपने जीवन में जिस प्रकार अणिमादिक ऐश्वर्य का प्रयोग किया है उस बल की साधना करने वाला योगी भी समय पर प्राप्त कर सकता है। आज भी भारतवर्ष में इस प्रकार के योगी मौजूद हैं जिनकी इस प्रकार की कथायें दंत परम्परा से अवगत होती ही रहती हैं। साधारण साधक समुदाय के अन्दर भी लोग अपनी छोटी–मोटी प्राणशक्ति का प्रदर्शन आज दुनिया में किया करते हैं। सैंकड़ों मन का वजन अपनी छाती पर रखाते हैं बैलों की गाड़ी, ट्रक अपनी छाती पर से उतरवाते हैं। ये उनकी प्राण–शक्ति का थोड़ा–सा प्रदर्शन होता है इसमें संयम बल की कोई भी साधना नहीं किंतु प्राण पर थोड़ा–सा जय प्राप्त करने पर ये लोग इस प्रकार के अद्‌भुत कर्म करके दिखाया करते हैं। जब मुझसे यह कोई प्रश्न पूछता है कि परमात्मा की ओर चलने वाले मार्गों में आपको कौनसा प्रिय है तो मुझे उसी समय केवल मात्र लीला तनु धारण करने वाले श्रीकृष्ण की स्मृति हठात् आया करती है और मेरी वाणी से एक ही उत्तर मिलता है। परमात्मा की ओर जाने वाले रास्ते बहुत हैं और मुन्डे–मुन्डे मतिर्भिन्ना के नियमानुसार अपने मार्गों को योगी तय भी कर लेता है किंतु हमारे पूर्वजों ने जिस विद्या का मान किया, श्रीकृष्ण की लीला अभिनय के अन्दर जो विद्या पग–पग पर टपकती है वह पवित्र योग विद्या ही है। इस छोटे से लेख में भगवान् श्रीकृष्ण की चार–पाँच कथाओं की ओर संकेत करके उनके योग ऐश्वर्य को बतलाने का प्रयत्न किया है।

"जो महापुरुष आत्म भाव एवं आत्म चिंतन में लीन रहते हैं, वे आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी देवी देवता की पूजा उपासना आदि नहीं करते हैं, क्योंकि वे सदैव सर्वत्र अपने निज स्वरूप आत्मा का ही अनुभव करते रहते हैं। जीवात्मा और परमात्मा का भेद अविद्या एवं माया से उत्पन्न हुआ है तथा कल्पित है। ब्रह्म आत्मा से भिन्न तत्व नहीं है।"

सर्वोत्तम यज्ञ है योग

'यज्ञो वै विष्णुः' यज्ञ भगवान् विष्णु का रूप माना गया है। हर शुभ कर्म या सत्कर्म को यज्ञ कहा जा सकता है। सृष्टि के आदि से ब्रह्मा जी ने मनुष्य को नाना प्रकार के यज्ञों को करने का उपदेश दिया है। गीता के अनुसार कोई भी व्यक्ति एक क्षण के लिए भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता। मनुष्य स्वभाव से ही सुख की कामना करता है, सुख प्राप्त करने के लिए शुभ कर्म में प्रवृत्त होना होता है। यज्ञ कर्मजन्य होता है। यज्ञ से वृष्टि होती है और वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है। अन्न से ही सारे प्राणियों की उत्पत्ति व पालन होता है। इस प्रकार से सृष्टि चक्र में यज्ञ की विशेष भूमिका रहती है। यदि पृथ्वी लोक में वर्षा न हो तो अकाल पड़ जाने के कारण अन्न की कमी से सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच जायेगी। इस प्रकार से यज्ञ वर्षा का कारण बन जाता है। वस्तुतः सभी यज्ञ शरीर, मन एवं इन्द्रियों से ही सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार से यज्ञ रूपी कर्म के दो विभाग बन जाते है—एक यज्ञ जीवन जो शरीर निर्वाह के लिए आवश्यक है तथा दूसरा आत्मोत्थान के लिए। परमार्थ के लिए किये जाने वाले कर्म को आध्यात्म कर्म अथवा कर्मयोग कह सकते हैं। इसका उद्देश्य योग समाधि की प्राप्ति है जो आत्म ज्ञान का एकमात्र कारण है। द्रव्य यज्ञ से लोक में अभ्युदय मिलता है। लौकिक सुख और उन्नति प्राप्त होती है। जबकि आध्यात्म योग से शाश्वत् शान्ति व मुक्ति मिलती है। मनुष्य का परम धर्म यही है कि योग साधना से आत्म दर्शन को पा ले। **'अयं हि परमो धर्मः यत् योगेन आत्म दर्शनम्'।**

गीता में भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज ने कहा है कि द्रव्यमय यज्ञ से ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है। मनुष्य को कर्म का शोधन तब तक करते रहना चाहिए जब तक ज्ञान का उदय न हो जाये। ज्ञान के उदय हो जाने के पश्चात् **'विवेक ख्याति'** का प्राकट्य हो जाता है। मनुष्य के चित्त की चंचलता अधिक रहती है। प्राणायाम एवं ध्यान योग से तमोगुण और रजोगुण दब जाते हैं। सत्व का प्रकाश चित्त में होने लगता है। कहा जाता है कि सतयुग में मनुष्य स्वाभाविक रूप से योगी विज्ञानी होता था, वह स्वभाव से ही ईश्वर चिन्तन में लगा रहता था; किंतु युगधर्म के अनुसार सतोगुण का ह्रास होने लगता है। इसलिए मनुष्य की बुद्धि ध्यानपरायण न होकर बहिर्मुखी होने लगी। इसी कारण से मनुष्य विभिन्न प्रकार के यज्ञों में प्रवृत्त होने लगा। बुद्धि में और स्थूलता आ जाने से व्यक्ति यज्ञों से ही उपराम होने लगा और मूर्ति पूजा व स्थूल प्रतीक पूजा में रुचि लेने लगा। अब सतोगुण में कमी आ जाने के कारण ध्यान योग की क्षमता कम हो गयी, वृत्ति बहिर्मुखी रहने लगी। कलियुग के लोगों के लिए तो नाम का ही आधार शेष रह गया। किंतु नाम के साथ सुमिरन का संयोग नहीं रहेगा तो लाभ अत्यल्प ही होगा।

कर्म की परिभाषा करते हुए योग दर्शन के भाष्यकार भगवान् व्यासदेव जी कहते हैं—

कुशलाकुशलानि कर्माणि– अर्थात् जिस क्रिया का सम्बन्ध अच्छी या बुरी भावना से हो उसे कर्म कहते हैं। अज्ञानता में जो कर्म बनते हैं, उनमें आसक्ति रहने के कारण वे बन्धन में डालने वाले होते हैं, किंतु योगी लोग ध्यानाभ्यासरत रहते हैं, इसलिए उनके अच्छे या बुरे कर्म नहीं बनते। योग दर्शन का सूत्र है– **'कर्माशुक्लाकृष्ण योगिनाम् त्रिविधमितरेषाम्'** अर्थात् योगियों के न तो पुण्य कर्म होते हैं और न ही पाप के। अर्थात् योगी लोग पाप–पुण्य से सर्वथा परे होते हैं। सांसारिक लोगों के पाप के पुण्य के तथा मिश्रित कर्म बनते रहते हैं। गीता का भी वचन है कि –

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः काम कारेण फले सक्तो निबध्यते।।

अर्थात् योगी कर्मफल को त्याग करके अखण्ड शान्ति को प्राप्त करता है, किंतु अयोगी कामनाओं से युक्त होने के कारण फल भोगने के लिए बाध्य होता है। ध्यान योग के बल के कारण योगी के कर्म बन्धन में डालने वाले नहीं होते हैं। योगी लोग योग यज्ञ करते हैं इसे ही **आध्यात्म योग** कहते हैं। उपनिषद् का एक मन्त्र है, जिसके अनुसार यह कहा गया है कि योगी अपने शरीर को यज्ञ की अरणी बना ले तथा प्रणव मन्त्र को उत्तरणी बना ले। तत्पश्चात् ध्यान रूपी मन्थन के बल से छिपे हुए आत्मदेव का साक्षात्कार कर ले। जैसे अरणी मन्थन करके यज्ञ के लिए अग्नि प्रकट कर ली जाती है, इसी प्रकार से योगी ध्यान रूपी मन्थन से आत्मज्योति को प्रकट करके आत्म का दर्शन प्राप्त करते हैं। ध्यान योग के पूर्व रूप में मन्त्र का जाप करना आवश्यक होता है। गीता में भगवान् ने **'यज्ञानाम् जप यज्ञोऽस्मि'** कहकर जप यज्ञ की महिमा को दर्शाया है। योगी लोग प्राण कर्म के द्वारा भी यज्ञ करते हैं। प्राणायाम के समान कोई तप या यज्ञ नहीं है। ज्ञानपूर्वक श्वास लेना और छोड़ना यज्ञ रूप ही है। प्राण में अपान का हवन करना तथा अपान में प्राण का हवन करना प्राण कर्म है जो गुरुगम्य है। यह सिद्धयोग की साधना के अन्तर्गत आता है, जो आध्यात्म की मुख्य व प्रारम्भिक साधना है। इसमें निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता होती है। योगी जब समाधि में इष्टदेव में लयता को प्राप्त होता है तो उस समय उसे करोड़ों यज्ञ का फल सद्यः मिल जाता है। जो पुण्य ध्यान योग से मिलता है वह और किसी साधन से नहीं मिल सकता। योग समाधि से ज्ञानाग्नि प्रकट होती है। जिस अग्नि में सारे शुभाशुभ कर्म भस्मीभूत हो जाते हैं। जो आत्मज्ञानी है, उसे कोई कर्म करने की आवश्यकता भी नहीं है। कर्म करे तो भी कर्म उसे बन्धन में डालने वाले नहीं होते– **'आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय'।**

इसलिए साधक को योग मार्ग का चयन करके समाधि की पराकाष्ठा को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। समाधि रूपी यज्ञ से कोई बड़ा यज्ञ नहीं है। इसी समाधि यज्ञ से परमात्म साक्षात्कार या आत्म साक्षात्कार होता है।

त्रिपुर-सुन्दरी

जनक कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर (म.प्र.)

जीव की जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीन अवस्थायें होती हैं। जाग्रत का अभिमानी विश्व और विराट उसका स्वरुप है। स्वप्न का अभिमानी तैजस और हिरण्यगर्भ उसका रूप है। अथवा समष्टि सूक्ष्म जगत का अधिष्ठाता 'हिरण्यगर्भ' तथा व्यष्टि सूक्ष्म शरीर का अभिमानी 'तेजस' उपासक है और 'हिरण्यगर्भ' उसका उपास्य है। सुषुप्ति में समष्टि कारण जगत अधिष्ठाता 'ईश्वर' उपास्य है तथा व्यष्टि कारण शरीर का अभिमानी 'प्राज्ञ' उपासक है।

सुषुप्ति में जब व्यक्ति गहरी नींद से जागता है, तब वह अनुभव करता है कि आज वह सुख से सोया। इस स्थिति को जागने वाला साक्षी स्वयं आत्मा है। इसका समष्टि जगत का अधिष्ठाता 'ईश्वर' तथा व्यष्टि शरीर का अभिमानी 'प्राज्ञ' कहलाता है।

जाग्रत अवस्था में व्यक्ति अपनी इन्द्रियों के माध्यम से बाह्य पदार्थों का अनुभव करता है। कानों से शब्द सुनता है। त्वम् इन्द्रिय से स्पर्श का अनुभव करता है। नेत्रों से रूप का, जीभ से रस का तथा गंध का अनुभव घ्राण इन्द्रिय से करता है। जाग्रत का अभिमानी विश्व और विराट उसका स्वरूप है।

स्वप्न में वह व्यक्ति इन्द्रियों के स्वामी मन से देखता है। मन ही स्वयं अकेला ही पाँचों इन्द्रियों के शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध का अनुभव करता है। इस अवस्था का अभिमानी तैजस है तथा सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ उसका स्वरुप है।

सुषुप्ति की अवस्था को जानने वाला स्वयं साक्षी आत्मा है। आत्मा स्वयं प्रकाश है। उसको प्रकाशित करने वाला अन्य कोई तत्व नहीं है। यही व्यक्ति की तुरीयावस्था है।

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तथा तुरीयावस्था को जानने वाला स्वयं आत्मा है। आत्मा प्रकाश है और अन्य सब प्रकाशक है। परंतु अज्ञानता के कारण आत्मा अपने आपको भूल गया। जिस प्रकार लकड़ी में अग्नि है। उसको रगड़ने से जलाया जा सकता है और धूल और पानी के डालने से उसको बुझाते हैं तो वह कोयला बन जाता है। जब वह कोयले को पुनः अग्नि से संयोग कर दिया जाता है, तो वह प्रकाशित होकर अपने असली रूप में लाल रंग को होकर प्रकाशित होने लगता है। इसी प्रकार आत्मा पर अज्ञानता अथवा अविद्या का आवरण पड़ जाता है।

अनित्याशुचिदु:खानात्मसु नित्य शुचि सुखात्मख्यातिरविद्या। योद. 2/5

जीव बना हुआ आत्मा अनित्य शरीर को नित्य मानने लगता है। अपवित्र हाड़, मांस

मल–मूत्र के शरीर को पवित्र मानता है और भोगों को सुखदायक समझकर उन भोगों में प्रवृत्त होता रहता है। यही दुख में सुख की अनुभूति रूप अविद्या है। इसी आत्म–अनात्म, अपवित्र में पवित्रता का तथा दु:ख में सुख का अनुभव करना ही अज्ञानता का आवरण ही आत्मा पर पड़ गया है। इसी आवरण के कारण ही आत्मा जीव बन गया है। यह जीव अपने अनात्म शरीर को अपना मान बैठा है। यह शरीर में अहंता–ममता कर लेता है। इसी अहंता–ममता के कारण ही जीव जन्म–मरण के भंवर में फँसा हुआ है।

जीव के जन्म मरण में फँसने का मूल कारण ब्रह्म की अव्यक्त योग माया है। योग माया ब्रह्म की अभिन्न शक्ति है। शक्ति अपने शक्तिमान से पृथक नहीं हो सकती है।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृत्तः।
मूढ़ोऽहम नाभि जानाति लोकोअयं अजं अव्ययम्।। गीता 7/25

अर्थात् मूढ़ व्यक्ति भगवान की योगमाया के आवरण के कारण ही उस अविनाशी और अव्यय, ब्रह्म को नहीं जान पाता है।

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं को जानने वाली यही योगमाया 'त्रिपुर सुन्दरी' कहलाती है। इस त्रिपुर सुन्दरी के कारण ही सारा जगत मोहित हो रहा है।

एक बार नारद जी ने भगवान विष्णु से उनकी माया को देखने की प्रार्थना की। विष्णु ने अपनी माया दिखाने का वचन देकर उनसे (नारद) अपनी प्यास बुझाने के लिए पास ही बने सरोवर में पानी लाने की आज्ञा दी। नारद जी जैसे ही अपने कमण्डल में पानी भरने के लिए झुके, वैसे ही उस सरोवर में फिसलकर गिर गये और गहरे गर्त में चले गये। तदुपरान्त उनका स्वरूप एक सुन्दरी का हो गया और वे आपको भूल गये कि मैं नारद हूँ। जैसे–तैसे पानी से बाहर आकर उस सरोवर के तट पर बैठ गए। संयोगवश उस देश का राजा आखेट खेलता हुआ वहाँ आ गया और उस सुन्दरी के रूप लावण्य पर मुग्ध हो गया तथा अपने साथ अपने महल में ले गया तथा उसे अपनी रानी बना लिया। कालान्तर में उस रानी के गर्भ से बच्चों ने जन्म लिया। उनका जीवन सुख के साथ व्यतीत होने लगा। कुछ समय पश्चात् उस राजा के ऊपर अन्य शत्रु राजा ने आक्रमण कर दिया और युद्ध में राजा अपने पुत्रों सहित मारा गया। रानी दु:ख से संतप्त होकर एक सरोवर में अपनी आत्महत्या करने के उद्देश्य से कूद गई। सरोवर में डुबकी लगाते ही वह स्त्री नारद के रूप में प्रगट हो गई और वीणा वादन करते हुए भगवान विष्णु के पास पहुँचे। भगवान् ने कहा कि यही मेरी माया है। इसी को 'त्रिपुर सुन्दरी' कहा है।

यह त्रिपुर सुन्दरी ब्रह्म की अभिन्न शक्ति है। ब्रह्म की यह निजशक्ति योग माया ही ब्रह्म की अध्यक्षता में रहकर समस्त जगत की रचना करती है।

मयाध्यक्षेण प्रकृति सूयते सचराचरम्।

हेतुन अनेन कौन्तेय जगत विपरिवर्तते।। गीता 9/10

योगमाया के अन्तर्गत ही महामाया और माया समाहित है। महामाया जीव को ऊर्ध्वगति प्रदान करती है और माया जीव को अधोगति को ले जाती है।

महामाया ध्यान योग के द्वारा जीव को आत्मा–अनात्मा के भेद को मिटाती है। यद्यपि आत्मा ब्रह्म का अभिन्न और अविनाशी अंश है। परन्तु अनात्म शरीर में अहंता, ममता के कारण वह जीव बन गया। महामाया का सहारा लेकर ध्यान योगी अनात्म शरीर को अपना न मानकर प्रकृति का संघात मात्र मानता है। वह जान लेता है कि शरीर नाशवान, परिवर्तनीय और विकारी है; परन्तु मैं आत्मस्वरूप से अविनाशी, अपरिवर्तनीय और अविकारी है। इस कारण ध्यान योगी अपने स्वरूप में स्थित रहकर कैवल्य को प्राप्त होता है। अर्थात् मन (चित्त) अपने कारण प्रकृति में निरूद्ध होकर उसमें लीन हो जाता है। और योगी उपास्य–उपासक के भेद को समाप्त करके आत्मा ब्रह्म की अभिन्नता का अनुभव करने लगता है।

माया– इसी योग माया का एक निम्न स्वरूप 'माया' है। जो 'है नहीं' फिर भी जीव को 'है' की प्रतीति कराती है। एक वस्तु की दूसरी वस्तु में मिथ्या प्रतीति 'विवर्त' कहलाती है। इस प्रतीति को उत्पन्न करने वाला तत्त्व माया है। यह माया अपनी आवरण और विक्षेप दो शक्तियों के द्वारा ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को ढक कर संसार की सृष्टि करती है।

जिस प्रकार आकाश में चंचल वायु उत्पन्न होती है; उसी प्रकार उस निराकार ब्रह्म में माया की प्रतीति होती है। परंतु वायु की चंचलता के कारण आकाश की निश्चलता भंग नहीं होती है। इसी प्रकार माया के कारण ब्रह्म की निर्गुणता में कोई अन्तर नहीं आता है। माया का रूप वायु की भाँति है। वायु भासती तो है; परंतु दिखाई नहीं देती है। वायु को सत्य तो कह सकते हैं, पर दिखाई नहीं देती। इसी प्रकार माया भासती तो है पर दिखाई नहीं देती है।

जिस प्रकार वायु के कारण आकाश में धूल आदि उड़ती दिखाई देती है। उसी प्रकार माया के कारण यह संसार दिखाई देता है। जिस प्रकार आकाश में अचानक बादल आ जाते हैं। उसी प्रकार माया (अविद्या) के संयोग से यह संसार दिखाई देता है और जीव में अहंता–ममता का भाव आ जाता है। इसी के कारण यह निर्गुण ब्रह्म माया के कारण सगुण दिखाई देता है। वस्तुतः यह संसार ''है नहीं'' प्रत्युत भासमान हो रहा है।

इस माया से निवृत्ति या तो विवेक ख्याति के द्वारा होती है, जिसके कारण योगीजन माया के प्रभाव से ऊपर उठकर ब्रह्मतत्त्व (आत्मस्वरूप) की अनुभूति करते हैं। अथवा –

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

मामेकं ये प्रपद्यन्ते मायां एतां तरन्ति ते।। गीता 7/14

अर्थात् भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि मेरी यह माया बड़ी अलौकिक और दुरत्यय है। जो प्रेमी भक्त 'मामेकं' अर्थात् मुझ ब्रह्म पर आश्रित होकर मेरा ही भजन करते हैं। वे प्रेमी

ब्र. गोपालानन्द जी महाराज के ध्यानानुभव

ध्रुव के दर्शन व काकी मुद्रा का बोध

एक दिन प्रभु प्रेरणाशत् भजन–कीर्तन कर रहे थे। उस भजन में ऐसा पद आया कि, "ध्यान ध्रुव का दो पिता।" इस पद के कहते ही प्रभु जी अन्तर्मुखी कर दिया और एक रम्य स्थान में जाने पर मुझे एक बालक दिखाई दिया जो कि सिद्धासन मुद्रा में बैठा था। उसके बाल कण्ठ तक आ रहे थे। बड़ी सुहावनी मूर्ति थी। उसको देखते–देखते ध्रुव तो वहाँ न रहा और मेरे अन्दर यह पूर्ण निश्चय हो गया कि मैं ध्रुव हूँ। जिस क्षण यह विश्वास हुआ उसी क्षण मेरे अन्दर अनेक प्रकार की वायु भरने लगी। मुझे आनन्दयुक्त हलका पवन–युक्त शरीर उड़ने वाला प्रतीत होने लगा। श्री प्रभुजी के ध्यान में देह–ध्यान न रहा। कुछ क्षण में श्री प्रभु जी के अन्दर–घट में घुस गया। पुन: मेरी अवस्था गुम हो गई। अपार आनन्द में मग्न हो गया। फिर श्री प्रभु जी ने उठा लिया। मैंने श्री प्रभु जी से पूछा कि क्या योगी के संकल्प में संसार रहता है ? श्री प्रभु जी ने कहा– हाँ, यह संकल्प में मात्र ही संसार है। फिर श्री प्रभुजी से पूर्ण दशा का वर्णन किया तो श्री प्रभु जी ने कहा– तेरे संकल्प से हमने यह काकी मुद्रा द्वारा ध्यान स्थित कराया था और ध्रुव को भी यही मुद्रा श्री नारद जी ने करवा कर बैठाया था, किंतु अभी इस मुद्रा को फिर न करना क्योंकि अभी समय नहीं आया है।

शिवरी के दर्शन व मूर्च्छा कुम्भक का ज्ञान

एक बार अंतर्मुख हुआ तो श्री प्रभु जी का दर्शन हुआ। श्री प्रभु जी ने पूछा क्या देखना चाहता है? मैंने प्रार्थना की प्रभो! कर्म और प्रारब्ध में कौन बलवान हैं? श्री प्रभु जी ने कहा कि उद्धव जी से इसका उत्तर दिलवाते हैं। इतने में ही उद्धव जी भी आ गये। उन्होंने कहा– यह प्रश्न शिव भगवान से करना चाहिए। इतने में ही भगवान शंकर के दर्शन हुए। इसी बीच में, मैं अपने प्रश्न को भूल गया और शबरी के प्रेम के स्वरूप को देखने की इच्छा मन में हुई तो मैं शबरी के आश्रम में पहुँच गया। वहाँ शबरी एक झोंपड़ी में ध्यान–मग्न बैठी थी। प्रभु जी ने मुझसे कहा– इसके नेत्रों पर लक्ष्य करो मैं उसकी ओर देखने लगा। थोड़ी देर बाद वह डाली उठ कर बाग की ओर चल दी। पेड़ों पर मीठे बेर लगे थे। वह हर एक पर टकटकी लगा कर देखती थी किंतु सब बेर सुन्दर व पके दीखते थे। मैंने श्री प्रभु जी से पूछा–प्रभो! यह क्या देखती है? श्री प्रभु जी ने कहा–चलो इसके हृदय के अन्दर चलें। यह कहते ही मैं और श्री प्रभुजी उसके हृदय–घट पर जाकर उसकी आकाँक्षा को देखने लगे। वह जिस बेर पर नजर डालती थी उस पर यदि राम के दर्शन होते थे तो उसको चखकर देखती थी। जिसमें श्री राम

के दर्शन नहीं होते थे उसको नहीं तोड़ती थी। कुछ ही देर में वह बेरों का संग्रह करके कुटिया में आकर ध्यान–मग्न हो गई और एक लम्बा स्वाँस खींचा, मैंने श्री प्रभुजी से पूछा कि इसने यह क्या किया? श्री प्रभुजी ने मुझे बतलाया कि इसी को मूर्च्छा कुम्भक कहते हैं यह आकर्षण गुरु और ईश्वर पर भी किया जा सकता है। इतने में ही देखा कि शबरी के स्वाँस प्रस्वाँसों में हृदय व रोम–रोम में श्री राम ही श्री राम दीख रहे हैं। वह सामने बैठकर बेरों का भी भोग लगा रहे हैं।

प्रसुप्त संस्कार की निवृत्ति

एक दिन श्री भाई मूलखराज जी ने कहा कि मैंने श्री प्रभुजी से इस भाव से कोई बात नहीं की थी किंतु प्रभु जी ने ऐसा क्यों समझा। पहिले भी दो–तीन बार ऐसा हुआ है। मैंने कहा–हाँ भाई जी। बात कुछ ऐसी ही हो रही है। मुझसे भी श्री प्रभु जी ने एक बार ऐसा ही कहा है। यह कह कर मैं चला आया। रात्रि को ध्यान में श्री प्रभुजी के दर्शन हुए तो श्री प्रभुजी से प्रार्थना की कि प्रभो! यह क्या माया है? व्यवहार में आप ऐसा बोध क्यों करते हैं जिसका बोध मन को भी नहीं होता किंतु आप उस बात को ग्रहण करते हो। उन्होंने कहा–अच्छा देख, यह कह कर श्री प्रभु जी ने एक नाटक के समान दृश्य दिखाया कि एक राजा की पहली स्त्री से एक लड़का था। दूसरा विवाह जब उसने किया तो उस स्त्री का राजा के मन्त्री से गुप्त सम्बन्ध हो गया। उसने रानी को सलाह दी कि राजा को विष देकर मार दो। उस स्त्री ने राजा को मार दिया। राजकुमार को एक गुप्तचर ने सब हाल सुना दिया। राजकुमार ने अपने ननिहाल में रहकर समय बिताया। बड़ा हो जाने पर उसने निश्चय किया कि पहले अपराधी की जाँच की जाय। राजकुमार के मन्त्री ने सलाह दी कि एक ऐसा नाटक खेला जाय जिसमें वही घटना पूर्ण रूप से दिखाई जाय तथा इस घटना को मन्त्री तथा रानी देखें, तब तुमको ऐसा निश्चय हो जायेगा। मन्त्री की सलाह के अनुसार उक्त नाटक उसी नगर में खेला गया और मन्त्री रानी ने भी उस नाटक को देखा। जिस समय नाटक की पात्री रानी ने विष का प्याला राजा को दिया तब भय और संकोच की छाया रानी पर पड़ी। उस समय सभा में बैठी हुई रानी के चेहरे पर भी भय व संकोच की छाया दौड़ गई। इसको देखकर राजकुमार ने निश्चय किया कि रानी ही अपराधिनी है। श्री प्रभु जी ने कहा कि इसी प्रकार हमारी शक्ति जमे हुए व दबे हुए बीज रूप संस्कारों को उखाड़ कर पश्चाताप रूपी अग्नि जलाकर नाश कर देती है।

सद्‌गुरु की कृपा और वासना का क्षय

एक दिन श्री प्रभुजी ने ऐसा दृश्य दिखाया। वह सूर्य रूप में आकाश में दीखने लगे। उसकी किरणें दूर–दूर जा रही थी। अनेक साधू वनों में बैठे हुए थे, तथा बहुत से गृहस्थ स्त्री–पुरुष दूर–दूर बैठे हुए थे। उन पर भी किरणें पड़ रही थी और उन किरणों का प्रभाव उनके मन पर पड़ रहा था। मन की पूर्व संस्कारों की वासना उन किरणों से नष्ट हो रही थी।

मैंने पूछा कि ये किरणें किस प्रकार कर्मों को नाश करती हैं? तब श्री प्रभु जी ने कहा, देख! जैसे सहारनपुर में तेरे ऊपर विपत्ति आने वाली थी और उनको दूर करने की विधि बताकर उस विपत्ति को नष्ट किया था। इसी प्रकार भक्तों की विपत्ति नष्ट करके रक्षा करनी पड़ती है। मैंने श्री प्रभुजी से प्रार्थना की कि वे किरणें तो नहीं दिखाई देतीं, बल्कि सूर्य से भी अधिक तेजस्वी स्वरूप में आपका दर्शन होता है। श्री प्रभु जी ने फिर दिखाया एक-एक किरण एक-एक सूर्य के समान है और मन के समस्त विकार जो तुमको होते हैं वह हमारे द्वारा होते हैं। वे संस्कार फिर हमारे द्वारा उभर कर नष्ट हो जाते हैं। उनग द्वारा सुख की आकांक्षा निकल कर दूर हो जाती है। जब तक संस्कार रहेगा तब तक यह हर्ष और शोक दूर न होंगे। जब संस्कार समाप्त हो जायेंगे तब न हर्ष होगा न शोक। सम की अवस्था रहेगी।

इसी तरह प्रत्येक शिष्य के बारे में समझो। अब जो कुछ भी हो रहा है उसके कर्त्ता तुम नहीं हो। जब तुम्हारा मन हमने ले लिया है तब तुम ऐसी चिन्ता न करो।

मन

जो रहीम मन हाथ है मनसा कहुँ किन जाय।
जल में ज्यों छाया परी काया भींजत नाय।।

रहिमन मनहि लगाय के देख लेउ किन कोय।
नर को बस करिबो कहा नारायन बस होय।।

–रहीम

अनुभव एवं संस्मरण

अवनीश भटनागर, सहारनपुर

गुरु कृपा प्रसादेन ब्रह्मा विष्णु महेश्वरः ।
सामर्थ्य तत् प्रसादेन, केवलं गुरु सेवया: ।।

चराचर जगत के अधिष्ठाता ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी ईश्वरीय विभुतियाँ परब्रह्म स्वरूप श्री सद्गुरु देव के परम कृपा प्रसाद से ही सकल सामर्थ्य को प्राप्त हैं वह कृपा प्रसाद उन्हें कैसे प्राप्त हुआ केवल सद्गुरु सेवा से। परम ज्योतिर्मय परब्रह्म रूप श्री मद आनन्दकन्द श्री चन्द्रमोहन महा प्रभुजी हिमालय की सिद्धेश्वर परम्परा के भीषण तपस्वी पूर्व जन्मों के ही सिद्ध समर्थ महापुरुष थे। उनका प्रादुर्भाव दिव्य था उनके कार्य अलौकिक थे उनका प्रभाव विलक्षण था उनके दर्शन पावन थे उनकी कृपा अपार थी। अनादि सिद्धेश्वर शुद्ध ब्रह्म श्री रामलाल महाप्रभुजी ने कैलाश से बस्तियों में प्रादुर्भूत होकर संस्कारी जीवों को दिव्य शक्तिपात देकर निहाल कर कृतकृत्य कर जीवों को नर से नारायण बना दिया। यह सारा कार्य श्री रामलाल महाप्रभुजी की महति कृपा ने किया उनके संकल्प में जो आ गया वही परम ज्योतिर्मय होकर संसार को दिव्य चमक देने वाला बन गया। जीव में बस पात्रता होनी आवश्यक है और दूसरा कार्य श्री सद्गुरु देव जी के पावन श्री चरणों में अनन्य निष्ठ शरणागति, किसी भी अवस्था मे श्री सद्गुरु देव के श्री चरणों में अनास्था पैदा न हो तो वह साधक श्री सद्गुरु परम कृपा से अवश्य ही निहाल एवं माला माल होकर रहेगा।

मैंने सर्व शक्तिमान श्री रामलाल महाप्रभु जी के पासपोर्ट साइज के स्वरूप के दर्शन प्रथम बार अपने पड़ोस में रहने वाली श्रीमति प्रकाशवती भटनागर के यहाँ किये थे जिन्हे हम दादी जी कहते थे। प्रथम दर्शन मे ही मुझे श्री महाप्रभु जी ने अपनी ओर आकर्षित कर लिया था और न जाने मैं उनके स्वरूप को कितनी देर तक एकटक देखता रहा जब मुझे कुछ बाह्य आभास हुआ तो मैंने प्रकाशवती दादी जी से पूछा कि ये कौन हैं इन्होंने तो मुझे बरबस अपनी ओर खीच लिया है वह बोली यह मेरे भाई के गुरुदेव है बहुत शक्तिवाले व चमत्कारी है सवाई धाम मे रहते हैं। मैंने दादी जी से कहा मुझे इनके विषय मे कुछ बताओ तो उन्होंने मुझे "सवाई के चमत्कारिक चरित्र" नामक पुस्तक दी मैंने पुस्तक में से श्री महाप्रभुजी का आकाश गमन पढ़ा पढ़ते ही अनायास ही आँखें बन्द हो गई और सारा दृश्य आँखो में तैर गया। आँख खुली तो सोचने पर मजबूर हो गया कि यह सब क्या है क्या ऐसा हो सकता है क्या ईश्वरीय शक्ति का दर्शन कलियुग में सम्भव है? ऐसे विचार उमड़ते रहे परन्तु तत्काल ही मेरे मन मे यह संकल्प बन गया कि मेरे गुरुदेव यही हैं। जबकि मैं गुरुओं पर जरा भी विश्वास नहीं करता था। कुछ ही

दिनों बाद तीव्र अन्तर्प्रेरणा हुई और कच्ची पेन्सिल से स्वरूप बना कर पूजा में स्थापित कर दिया और नित्य पूजा करने लगा। यह घटना लगभग सन् 1979–80 की है मैं तो उस समय बच्चा ही था कक्षा 5 या 6 में अध्ययनरत था। सप्ताह भागवत् के सात अनुष्ठान कर चुका था और मन में यह आया करता था कि भगवान तो मिले नहीं।

कुछ समय बाद सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी का जन्म दिवस समारोह चित्रगुप्त मन्दिर सहारनपुर में मनाया जा रहा था। मुझे पता चला कि सवाई वाले परम चमत्कारी गुरु देव श्री चित्रगुप्त मन्दिर में विराजमान हैं। वह स्थान हमारे घर के पास में ही था पर चाह कर भी व्यस्तता के कारण श्री गुरुदेव के जन्म दिवस समारोह में नहीं जा सका। घर के लोग जाते रहे और जिस दिन समय निकाल कर गया उस दिन श्री सद्गुरु देव जी योग प्रचार कार्यक्रम सम्पन्न करके अन्यत्र प्रस्थान कर गये थे। मुझे उनके दर्शन न होने के कारण से भारी दुःख हुआ और यह दुःख धीरे–धीरे भारी श्रद्धा में बदल गया। अब मैं निरंतर इस इन्तजार में रहने लगा कि कब सवाई वाले सिद्ध सद्गुरु आयेंगे और कृपा करेंगे। कुछ वर्षों बाद पुनः श्री सद्गुरुदेव जी का आगमन सहारनपुर में हुआ। आये तो वह इस बीच अनेक बार सहारनपुर में थोड़े–थोड़े समय के लिए और मुझे इसकी सूचना नहीं मिल सकी क्योंकि मैं किसी भी रूप से गुरुभाई समाज से जुड़ा हुआ नहीं था जो मुझे इसकी सूचना कोई देता। श्री सद्गुरु देव जी के प्रथम बार दर्शन में मैं उनको पहिचान नहीं सका दर्शन करने के बाद भी बाहर जाकर किताब बेचने वाले वाजपेयी बाबा से पूछने लगा कि सवाई वाले चमत्कारी सिद्ध सद्गुरुदेव कौन से हैं वाजपेयी बाबा ने सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी की ओर इशारा करके कहा कि यह बैठे तो हैं। सवाई वाले चमत्कारी गुरुदेव। मैंने वाजपेयी बाबा से कहा कि यह नहीं वह जिनकी बड़ी–बड़ी जटायें हैं काली दाढ़ी है यह सुनकर वाजपेयी बाबा बोले वह तो श्री रामलाल महाप्रभुजी हैं उनकी सारी शक्ति अब इनके रूप में ही कार्य कर रही है।

मैंने अन्दर जाकर श्री सद्गुरु देव जी को प्रणाम किया उन्होंने मुझे तीन बार कमर पर थपकी देकर आशीर्वाद दिया मैंने चार दिन बराबर गुरुजी का सत्संग सुना। कुछ वर्ष पश्चात मुजफ्फरनगर में श्री गुरुदेव जी का कार्यक्रम आयोजित हुआ। उसमें भी मैंने श्री सद्गुरु देव जी के दर्शन किये और सत्संग सुना इसके बाद श्री सिद्धगुफा योग प्रचार सभा सहारनपुर द्वारा आयोजित साप्ताहिक सत्संग में जाने लगा। जिसका संचालन बड़े गुरुभाई श्री जुगमन्दर दास जी करते थे। उन्होंने सद्गुरु देव जी के प्रति मेरी अनन्य निष्ठा को देखकर मुझसे एक दिन कहा कि अवनीश तुम श्री गुरु देव जी को पत्र लिखो कि वह तुम्हें गुरुदीक्षा प्रदान करने की कृपा करें। मैंने चिट्ठी लिख दी उसका उत्तर उन्होंने तत्काल दिया उस समय गुरुदेव श्रावणमास के अनुष्ठान में थे उन्होंने 'ॐ' लगाकर पंचाक्षरी विद्या का उपदेश किया और लिखा कि जब तक हम सहारनपुर आते हैं तब तक तुम इस विद्या का जाप करो। जब पत्र मेरे पास पहुँचा तो मुझे उसी समय से दिव्य अनुभव होने प्रारम्भ हो गये मैं समझ भी नहीं सका कि

यह क्या हो रहा है। मुझे नित्य नये–नये अनुभव होते दिव्य दर्शन होते पर मैं बिल्कुल नहीं समझ पाता था श्री गुरुदेव जी की महती कृपा को पर मस्त रहता था उनके दिव्यानंद में। मुझे और कोई कार्य न था एक तो पढ़ना और दूसरे गुरुदेव का चिन्तन करना। एक दिन मैंने महाप्रभु श्री रामलाल जी के सन्यासी के वेष में हाथ में भस्मी से भरा कमण्डल लिये और सद्गुरु देव श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी के ब्रह्मचारी वेष में दर्शन किये दोनों के मुख पर अपार दिव्य तेज था दृष्टि टिकती नहीं थी। दोनों महाप्रभु हमारे घर पधारे और जोर से आवाज लगाई 'अलख' मैं आवाज सुनकर उनके पास पहुँचा तो उन्होंने मुझसे कुछ माँगा तो मैंने मन में उनकी ओर से पीठ फेर कर विचारा कि यह संसारी वस्तु माँग रहे हैं यह कैसे महाप्रभुजी हैं और उनकी ओर से पीठ फेर ली उन्होंने मेरा हाथ पकड़ कर कहा कि 'कहाँ जायेगा' मैंने कहा कि अपने कमरे में उन्होंने अपने पीतल के कमण्डल में से भस्मी निकाल कर मेरे माथे पर त्रिपुण्ड लगा दिया और हाथ छोड़ दिया और कहा अब कहीं जा इसके बाद उन्होंने मेरे छोटे भाई को अपने पास बुलाकर तीन फल दिये और मुझे देने को कहा और अन्तर्ध्यान हो गये।

एक समय सर्दी का मौसम होने के कारण से मुझे नजला काफी हो गया। नाक से सांस लेना दूभर हो गया। मैंने श्री गुरुदेव जी से पुकार की तो वह रात्रि तीन बजे बन्द दरवाजों में आकाश में उड़ते हुए आकर कमरे में प्रकट हो गये और मेरे सिर पर हाथ फेरा और कहा कि जा ठीक हो जायेगा। मैंने थोड़ी देर बाद अपना परीक्षण किया तो मैं बिल्कुल ठीक हो चुका था। काफी समय मैं बिल्कुल स्वस्थ रहा पर पुन: क्लिष्ट संस्कारों का भुगतान देने के लिए स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया धीरे–धीरे इतना अधिक खराब हो गया कि लगने लगा कि अब यह शरीर जायेगा रहेगा नहीं। मैंने श्री महाप्रभुजी से प्रार्थना की कि यह शरीर तो आप बीच में छुड़वा रहे हो पर वादा करो कि अगले जन्म में भी मिलोगे। इसके बाद मुझे दिव्यानुभूति हुई कि श्री रामलाल महाप्रभुजी विराट रूप से किसी पर्वत पर खड़े हैं चारों ओर बर्फ ही बर्फ है बड़े–बड़े पर्वत भी उनके सामने दो–दो, चार–चार इंच के खिलौने मात्र दिखाई दे रहे हैं मैं भी वहीं कहीं पर्वत पर उनके इस दिव्य विराट रूप के दर्शन कर रहा हूँ उनकी जटायें भूरी और काली जो हवा में उड़ रही हैं। मैंने उनसे प्रार्थना की कि मैं आपके श्री चरणों में प्रणाम करना चाहता हूँ मैंने जब उनके श्रीचरण देखे तो वह पर्वत की घाटियों में कहीं नीचे विराजमान थे ऐसा था उनका विराट रूप। इतने में उन्होंने मुझसे कहा कि चलो हमारे साथ वह मुझे अपने साथ उड़ा ले चले मुझे एक पर्वत पर ले गये वहाँ हजारों साल पुरानी कोई कुटिया थी उसमें बहुत पुराना सन्दूक और उसमें एक दुर्लभ अति प्राचीन एक पुस्तक थी वह पुस्तक श्री रामलाल महाप्रभुजी ने मुझे पढ़ने को दी उसमें से मुझे कुछ याद नहीं रहा। सिर्फ आखिर के दो शब्द श्री महाप्रभु जी ने कहा उनका जाप कर मैंने उन दो शब्दों का ही खूब जाप किया और श्री महाप्रभु जी की कृपा स्वरूप बिल्कुल स्वस्थ हो गया।

महाप्रभु श्री रामलाल जी के प्रादुर्भाव दिवस श्री रामनवमी पर बहुत से गुरुभाई सवाई

धाम जा रहे थे, मेरे मन में भी बहुत थी जाने की, पर ना जा सका मन बहुत दु:खी हुआ। मुझे दृश्य दिखाई दिया कि मैं किसी गाँव के स्टेशन पर खड़ा हूँ ईंटों का फर्श है बीच–बीच में घास भी उगी है। इतने में वहाँ एक गाड़ी आई, वह बिना रुके स्पीड से चलती रही मुझे लगा कि अब मैं सवाई धाम कैसे जाऊंगा गाड़ी तो रुकी ही नहीं इतने में गाड़ी का पिछला डिब्बा आ गया। मैंने देखा उसमें से एक सफेद कुर्ते वाला हाथ बाहर निकला और प्लेट फार्म पर से मुझे झट से मुझे गाड़ी के अन्दर खींच लिया। हजार बाधायें होते हुए भी मैं कुछ समय बाद सवाई धाम के दर्शनों को पहुँच गया। जब मैंने मितावली स्टेशन देखा तो यह वही स्टेशन था जो मुझे दिखाई दिया था।

मैंने जब से होश सम्हाला तो अपने आप को देवी देवताओं की उपासना करते पाया। माता शाकम्भरी जी के मिट्टी के विग्रह बनाकर उनकी सेवा पूजा करता था। जब मैं श्री महाप्रभु जी की सेवा पूजा करने लगा परंतु सद्गुरुदेव श्री चंद्रमोहन महाप्रभुजी के प्रति श्री रामलाल महाप्रभुजी के मुकाबले कम श्रद्धा थी मैंने स्पष्ट देखा कि माता शाकम्भरी मुझे अपने साथ जंगल में अपने प्राचीन एवं गुप्त मन्दिर में लेकर गईं। वहाँ उनके भवन में आरती हो रही थी मन्दिर में बीच का विग्रह माता शाकम्भरी जी का है उसके स्थान पर माता शाकम्भरी जी स्वयं प्रत्यक्ष रूप से खड़ी हैं। उनका रूप परम मनोहर एवं तेजस्वी था एवं श्रृंगार मनोहर था वहाँ एक दम जल की धारा मन्दिर में फूट पड़ी जिसने माता जी के चरण धोये वहीं पास में मुझे अकस्मात् सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी भी दिखाई दिये माता शाकम्भरी जी ने मेरा हाथ पकड़ कर सद्गुरुदेव श्री चंद्रमोहन महाप्रभु जी के हाथ में दे दिया और कहा कि मेरा यह बालक आज से आपको सौंप रही हूँ यह अनुभूति काफी बड़ी है पर जितना वर्णन आवश्यक था उतना ही किया है। बाद में मैंने विचार किया कि श्री सद्गुरु देव जी के विषय में तो मैं अधिक नहीं जानता परंतु अपनी ईष्ट माता शाकम्भरी देवी को तो जानता हूँ कि यह आदि शक्ति है सर्वशक्तिमान हैं अपने श्रेष्ठ एवं बड़े को ही जिम्मेदारी सौंपी जाती है शाकम्भरी स्वयं महाशक्ति हैं तो निश्चय ही श्री सद्गुरु देव और बड़ी ताकत हैं ''नास्ति तत्वं गुरु परं'' शास्त्र भी कहता है, सद्गुरु देव स्वयं परब्रह्म हैं कहा भी है गुरुं साक्षात् परब्रह्म। उसी दिन से सद्गुरु देव श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी के पावन श्री चरण कमलों में पूर्णत: समर्पित एवं नतमस्तक हो गया। अब तो मेरे सर्वस्व वही हैं और वही सच्चा जीवन धन हैं। कुछ समय पश्चात् मेरी विधिवत दीक्षा सिद्धों के महासिद्ध योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी से हुई उन्होंने गुरु दीक्षा में मुझे श्री चरण पादुका भी प्रदान की। दीक्षा के पश्चात् और अधिक निष्ठा के साथ श्री चरणों में लग गया। सत्संग मण्डल का पुनर्गठन किया जो कमियाँ थीं उनको दूर किया और कैसे अच्छे से अच्छा हो सके इसी प्रयास में सदा लगा रहा। श्री सद्गुरु देव जी के दर्शनों को गुरु धाम में भी जाता रहा। वह स्वयं भी सहारनपुर पधारते रहे और दिव्य शक्ति संचार देते रहे। पत्रों के द्वारा भी वह निरंतर दिव्य आशीर्वाद व पुष्प प्रसाद भेजते रहा करते थे। उनके अनेकों पत्र पूंजी की भाँति सुरक्षित

रखे है। एक पत्र में लिखा था ''लल्ला! हम चाहते हैं तुम योगि बनो'' . एक अन्य पत्र में आदेश दिया कि तुम किसी भी महात्मा से मत डरो, एक पत्र में लिखा कि 'सहारनपुर में सत्संग की धूम मचा दो हमारा हार्दिक आशीर्वाद एवं शुभ संकल्प प्रतिक्षण तुम्हारे साथ है आनन्दकन्द कल्याण घन श्री प्रभुजी जो करेंगे ठीक ही करेंगे।' दूसरे पत्र में लिखा था हमारा हार्दिक आशीर्वाद है तुम धूम धाम से सत्संग चलाओ। अनेकों पत्रों में अनेकों बाते उन्होंने लिखी वह सब पत्र हमारे पास सुरक्षित है और हमारे जीवन की अमूल्य निधि एवं सच्ची पूँजी है। यहाँ तो कुछ ही पत्रों का वर्णन किया है।

सन 1990 में हमारी प्रार्थना पर कृपा करके श्री सद्गुरु देव जी सहारनपुर पधारे और शिवरात्रि महापर्व बड़ी धूम धाम से सहारनपुर में मनाया। मेरे लिये तो जैसे यह वरदानों का दिन ही उन्होंने बना दिया था। इस दिन अनेकों वरदान उन्होंने दिये कुछ का वर्णन करता हूँ उन्होंने मुझसे भजन सुनाने को कहा, मैंने तुरन्त आज्ञा पालन की सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी ने सभी गुरु भाई समाज के सामने खड़े होकर सिर पर हाथ रखकर यह वरदान दिया कि लल्ला इसी प्रकार से खूब धूम धाम से सत्संग किया करो यही तरीका है सत्संग करने का हमारा हार्दिक आशीर्वाद है पूर्ण आशीर्वाद है। दूसरे सहारनपुर में योग आश्रम बनाने का आदेश दिया (मेरी ओर संकेत करके) कि यह करा लेगा और कहा कि चाहते तो हम भी हैं कि सहारनपुर में योग आश्रम हो उनका आदेश था ऐसा ही हुआ यह दास दो आश्रमों की स्थापना का निमित्त बना। इसी समय ही उन्होंने अपने शरीर छोड़ने का भी संकेत करा दिया था। इसके पश्चात् 10 जून सन् 1990 को श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी सहारनपुर दर्शन देने पधारे जब पूर्व की भाँति मैंने स्वय निर्मित की हुई उनकी आरती गाई तो वह बहुत प्रसन्न हुए और आरती की अन्तिम लाइन पर कि 'दास अवनीश शरण में आया, मुझ पर करो हे कृपालुदया। मैं भी तो दास आप ही का कहाऊ.... तो अपना सन्दूक वह खोले बैठे थे आरती सुनकर एकदम बोले। अच्छा ऐसी बात है तो फिर ले, अच्छा ऐसी बात है तो फिर ले। सन्दूक में से दोनो हाथों में कुछ भरते थे और मुझे देते थे दोनों बार ऐसा ही किया। मुझे तो बाह्य दृष्टि में कुछ दिखाई नहीं दिया। पर उन्होंने कुछ विशेष दिया जिसको जान ही नहीं पाये हम।

एक समय मेरे ऊपर किसी ने मारने के लिए तान्त्रिक प्रयोग करा दिया। जिससे हालत अधिक खराब हो गई इतनी खराब हो गई कि मृत्यु ही आ गई। अस्पताल में भर्ती किया गया। डाक्टर घरवालों से बोले आपने देर कर दी लाने में अब इसमें कुछ नहीं है। घरवाले बहुत दु:खी हुए। उन्होंने कहा, डाक्टर साहब ऑक्सीजन लगा दो, डाक्टर ने मना किया इसमें कुछ नहीं है घर वाले बोले हमारी तसल्ली के लिए लगा दो जैसे ही ऑक्सीजन लगाई श्री सद्गुरुदेव जी की परम कृपा से श्वांस चल पड़ी और जीवन दान दे दिया। कहाँ तक उनका वर्णन करें संस्मरण लिखे सदैव असमर्थ ही रहेंगे। हजारों संस्मरण शेष हैं उनकी लीलायें इतनी हैं कि कोई भी छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा हमारा कार्य उनकी महति कृपा के बिना

नहीं होता हर कार्य को वो ही करते है। इतना ही नहीं हमारे साथ उठने–बैठने वाले व्यक्ति तो उनको जानते भी नहीं उनके तक कार्य श्री महाप्रभुजी एवं सद्गुरु की परम कृपा से तत्काल हो जाते हैं।

हमारे सद्गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी गुरुओं के परम गुरु स्वयं परब्रह्म कुर्तुम अकुर्तुम शक्ति वाले किसी के लिए कुछ भी कर देने में समर्थ महाप्रभु हैं। ऐसे ही गली–गली घूमने वाले खाली नाम के गुरु नहीं हैं। सच्चे सद्गुरु हैं। सर्वशक्तिमान हैं। इसलिए उनके प्यारे शिष्य अपने सद्गुरु देव जी को भगवान से भी बढ़कर मानते हैं, पूजते हैं। जहाँ देवी देवता, सिद्ध, गन्धर्व सब उनकी आराधना करते हैं वहाँ मनुष्य की तो बात ही क्या है। ऐसे सर्व वन्दित सद्गुरुदेव जी के तो श्रीचरणों में अनन्यभाव से समर्पित होकर मात्र गुरु आज्ञा का पालन करता रहे यह उसको इहलोक और परलोक दोनों में निहाल और मालामाल करे बिना नहीं छोड़ेंगे।

जय श्री सद्गुरुदेव

यह तन विष की बेलरी, और गुरु अमृत की खान।
शीष दिये यदि गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।।

तेजोऽसि सहोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानां धामनामसि विश्वमसि विश्वायु:।

अर्थात् हे अन्न! तुम तेज हो, तुम उत्साह हो, तुम बल हो, तुम दीप्ति हो, तुम ही चराचर विश्वरूप हो, तुम ही विश्व के जीवन हो।

एक वयोवृद्ध साधक के ध्यानानुभव

(श्री सद्गुरु देव जी को प्राप्त पत्र के आधार पर)

(कछवा जिला मिर्जापुर के वयोवृद्ध साधक श्री प. सदानन्द उपाध्याय ने सन् 1966 ई. में गंगा दशहरा के पावन पर्व के दिन श्री योग साधना आश्रम ऋषिकेश के वार्षिक महोत्सव पर सद्गुरु देव अनन्त श्री योगिराज श्री चन्द्रमोहन महाराज से योग-दीक्षा ग्रहण की थी। शक्तिपात योग दीक्षा को प्राप्त करके प. सदानन्द जी ने अपना अभ्यास श्रद्धा और निष्ठा के साथ नियमित रूप से आरम्भ कर दिया। उनके ध्यान की स्थिति दिन व दिन गहरी होती चली गई। अनेक पावन रम्य दृश्यों और घटनाओं के अद्भुत दर्शन इन्हें अपनी ध्यान साधना में होने लगे। श्री श्रद्धानन्द जी ने अपनी ध्यान-स्थिति के अनोखे व दिव्य अनुभव श्री सद्गुरु देव जी को लिखकर भेजे हैं, जिन्हें हम सिद्धयोग के पाठकों को उनके ज्ञान-वर्द्धन के लिए नीचे प्रकाशित कर रहे हैं। —सम्पादक)

हे प्रभो ! 29-9-68 को जब मैं ध्यान में बैठा तो मुझे विशेष प्रकार का अनुभव हुआ। जब ध्यान आरम्भ होता तो श्वास ऊपर चढ़ जाता। मैं इष्ट देव में लय था। नाभि देश में देखा कि एक सुन्दर तेजोमय देवी मुकुट धारण किये खड़ी है। उसका केवल शीर्ष भाग ही गर्दन तक मुझे दिखाई पड़ा। नेत्र उसके बन्द थे। ऐसे दर्शन मुझे दो बार हुए।

जब मैं 30-9-68 की रात्रि को लगभग 3 बजे जागा तो अपने आपको खुली आँखों इष्ट देव के रूप में ऋद्धि-सिद्धि के साथ देख रहा था, जब ध्यान में बैठा तो दो तीन बार छटपटाया। उसके बाद अपने को अखण्ड मण्डलाकार प्रकाश में देखता था, जिसका वर्णन करना असम्भव है। जैसा मैंने लिखा है ध्यान लगने पर श्वास ऊपर चढ़ जाता था। एक बार इस स्थिति में मालूम हुआ कि मैं इष्ट देव के रूप में हूँ और अपनी सूंड को नाभि के निचले भाग में धंसाया जिसमें बड़ी ताकत लगानी पड़ी। इसके बाद ध्यान खुल गया।

पुनः ध्यान लगा तो देखा जिस देवी की केवल गर्दन दिखाई पड़ी थी वही देवी एक सुन्दर सिंहासन पर जिस पर छत्र लगा था कुंडल मुकुट धारण कर पीताम्बर वस्त्र पहने आँखें बन्द किये बैठी है। ध्यान में ऐसा दो बार दिव्य दृश्य सामने आया।

उसके पश्चात् मैं एक श्री विजयसिंह के घर निमंत्रण पर गया हुआ था। उनके घर पर ही मेरा दिल घबराने लगा। उस समय बिना खाना खाये वापस घर जाकर जमीन पर लेट गया और खुली आँखों अपने आपको इष्टदेव के स्वरूप में विलीन देखने लगा और छटपटाने लगा। कुछ देर के पश्चात् शान्ति प्राप्त हुई और मैं जमीन पर पड़ा खुली आँखों ध्यानस्थ था। उसमें देखा प्रभु जी (श्री गुरुदेव) चन्द्रमोहन जी महाराज व महाप्रभु जी (श्री सदा शिव) मेरे

दोनों सामने खड़े हैं और श्री महाप्रभु जी मेरे ऊपर अपना कृपा कर–कमल रखे हैं। मैं बड़ी व्यग्रता से छटपटाने लगा। इसके बाद देखा कि देवी जी नेत्र खोल रही हैं। बाद में देखा कि वे बड़े जोर से जम्हाई लेने लगीं। इधर मेरे में भी यही क्रिया होने लगी। फिर देवी जी ने महाप्रभु जी की ओर निहार कर पूछा कि आपने मुझे क्यों जगाया। प्रभु जी ने कहा– उठिये, पहले आपकी पूजा व आरती होगी। फिर बताया जायेगा कि क्यों आपको जगाया गया है। देवी जी उसी सिंघासन पर सम्हल कर बैठ गई और उनकी पूजा व आरती होने लगी। मेरे सूक्ष्म शरीर ने उन्हें चन्दन चिंचित किया माला पहनाई और आरती करने लगा। मैंने देखा महाप्रभु जी प्रसन्न मुद्रा में एक ओर खड़े हैं। श्री कृष्ण जी बासुरी, शारदा जी सितार और शंकर जी डमरू बजा रहे हैं। ब्रह्मा जी वेदपाठ कर रहे थे जिसे मैं साफ सुन रहा था। इसके बाद यह देखा कि एक सूंड ऊपर से आई उसमें हाथी की चिंघाड़ जैसा शब्द निकला। तब देवीजी ने ऊपर देखकर कहा–आप भी हैं। सभी लोग यह सब खड़े–खड़े देख रहे थे। तब महाप्रभु जी ने कहा इसे आशीर्वाद दो। तब देवी जी ने खड़े होकर मेरे सूक्ष्म शरीर के मस्तक पर जिसने आरती की थी, हाथ रखकर तीन बार कहा– मंगल हो। इसके बाद मैं बेहोश होकर उसी अवस्था में पड़ा रहा। जब चेत आया तब अपने को इष्टदेव के रूप में पाया।

दिनांक 1–10–68 विजय दशमी के दिन जब मैं रात्रि के 3 बजे इष्टदेव के रूप में लय हुआ जगा, किसी प्रकार शौच–स्नान आदि किया। स्नान करने के पश्चात फिर अचेतन अवस्था में इष्टदेव के रूप में ही चारपाई पर पड़ गया। और इष्टदेव के ही रूप में मंत्र का जाप करता रहा। प्रभु जी व आपको अपनी चारपाई पर पड़ा–पड़ा देखता रहा। तथा पाँच हजार गुरु मंत्र का जाप किया।

पुनः जब ध्यान में बैठा तो श्वास चढ़ गया और मैं बराबर इष्टदेव के रूप में लय होकर गम्भीर मुद्रा में नाभि के पास सिंघासन पर बैठी देवी को देखता रहा। करीब 1 घन्टे तक यही क्रम चला। इसके बाद महाप्रभु जी के जयन्ती समारोह में सम्मिलित होने गुरुभाई श्री स्वामी प्रसाद जी के घर गया। वहाँ जाकर देखा भजन, कीर्तन आदि हो रहा है, मैं भी वहीं जाकर बैठ गया। वहाँ बैठते ही मेरी दशा गम्भीर होने लगी। और मुझे बाहरी ज्ञान अल्पमात्र भी नहीं रहा और उसी आनन्द में मुझे आपका तथा महाप्रभु जी का दर्शन होने लगा और झूमने लगा तथा बिल्कुल तन्मय हो गया। उसी स्थिति में श्री स्वामी प्रसाद जी ने मुझसे आपका व महाप्रभु जी का सामूहिक आरती पूजन करवाया। हे प्रभो आरती होते समय श्री कृष्ण जी ब्रह्मा जी, शंकर जी, सरस्वती जी और बहुत से देवता गण उपस्थित थे जिन्हें मैं खुली आँखों देख रहा था और आरती के समय श्री कृष्ण जी वन्शी बजा रहे थे। ब्रह्मा जी वेदपाठ कर रहे थे और सरस्वती जी वीणा बजा रही थीं तथा शंकर जी डमरू बजा रहे थे। ऐसी अचेत अवस्था की स्थिति उस दिन हमारी 8 बजे रात्रि तक चलती रही।

दूसरे दिन 2–10–68 को सुबह चार बजे शौच आदि के बाद इष्टदेव के रूप में ही

जाप शुरू हुआ, पाँच हजार जप करने के बाद फिर ध्यान में बैठा। ध्यान लगा तो ऐसा प्रतीत हुआ कि आपने कहा कि इष्टदेव जी से देवी जी का आसन ठीक करा दजिए। उसके बाद मेरा शरीर इष्टदेव के रूप में ही तोड़ मरोड़ करने लगा। काफी तोड़ मरोड़ के बाद नाभि के पास एक कमल का फूल दिखाई पड़ा और उसी पर देवी जी विराजमान थीं।

पुनः श्वास चढ़ा ध्यान लगा और देवी जी का उसी कमल के फूल पर दर्शन होता रहा। वह फूल और देवी जी खूब प्रकाशवान् थे। मेरा सूक्ष्म शरीर देवी जी के पास बैठा था। आपकी आज्ञा से देवी जी का आरती पूजन किया। दिन भर मैं इष्टदेव के रूप में बना रहा और श्वास से मंत्र का जाप होता रहा। हे गुरु देव जो मैं ध्यान में देखता रहा वह वर्णन करना मेरी शक्ति से बाहर है फिर भी आपकी कृपा से कुछ लिखने का प्रयास कर रहा हूँ।

नित्य की भाँति 3–10–68 को सुबह 4 बजे शौच स्नान आदि से निवृत्त होकर इष्ट देव के ही रूप में जप करता रहा। उसके बाद फिर जाप पाँच हजार पूरा होने के बाद ध्यान में बैठा तो श्वास चढ़ा तो आपकी ओर से संकेत मिला– देवी जी से पुनः आशीर्वाद प्राप्त करो। इसके बाद शरीर में कम्पन होने लगी उसके बाद कमल का फूल साफ–साफ दिखलाई पड़ा। उस पर देवी जी विराजमान थीं। हँस कर देवी जी ने मेरे सूक्ष्म शरीर के सिर पर हाथ रखा और कहा– कल्याण हो, कल्याण हो। इसी प्रकार तीन बार श्वास चढ़ा और ध्यान लगा। यों पूरे दिन मैं इष्ट–देव में लय रहा।

जिसने भगवान के साक्षात् दर्शन नहीं किये, संतों में उसकी मान्यता नहीं। संत और भक्त वही है जिसे भगवान का सगुण–साक्षात्कार हुआ हो। भोजन के बिना तृप्ति कहाँ?

हंस योग और नाद

श्री पं. मनोहरलाल शर्मा, कोलकाता

नाद के सम्बन्ध में कुछ अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता है। सूक्ष्म प्राण के उच्चार को नाद कहते हैं। कुण्डलिनी शक्ति से नाद की उत्पत्ति होती है। 'प्रकृति: निश्चला परावाग्रूपिणी पर प्रणवात्मिका कुण्डलिनी शक्ति:'। प्रपंचसार तन्त्र विवरण, पटल 30। निश्चल प्रकृति परावाणी रूप प्रणव स्वरूप वाली कुण्डलिनी शक्ति है, यानी ओंकार, कुण्डलिनी, परावाक् एक ही वस्तु है। शारदा-तिलक प्रथम पटल में लिखा है –

सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद् बिन्दु: समुद्भव:॥7॥

सच्चिदानन्द कला सहित (सगुण) परमेश्वर से शक्ति उत्पन्न हुई, शक्ति से नाद, नाद से बिन्दु उत्पन्न हुआ। यह नाद शिव शक्त्यात्मक है। नाद सर्वप्रथम परावाणी के रूप में मूलाधार से उठता है। पुन: मणिपुर (नाभिचक्र) में आकर प्राण से संयुक्त होकर पश्यन्ती वाणी के रूप में बदल जाता है। फिर अनाहत (हृदय चक्र) में बुद्धि से संयुक्त होकर मध्यमा वाणी के रूप में परिणत होता है। वही नाद कण्ठ में आकर वर्णात्मिका रूप बैखरी वाणी बन जाता है, जिससे कि-जगद्व्यवहार चलता है। नाद में दो अंश होते हैं-ध्वनि-अंश तथा वर्णांश। प्रत्येक अक्षर (अ से क्ष तक) में दोनों अंश विद्यमान रहते हैं। सब वर्णो का जनक नाद ही है। इसे प्रणव की ध्वनि भी कहते हैं। नाद प्रकाशमय होता है। भगवती कुण्डलिनी से निरंतर नाद रूप अव्यक्त ध्वनि प्रवाहित होती रहती है, इसे अनाहत ध्वनि अथवा नाद कहते हैं। यह नाद स्पंदन ही वायु रूप प्राण बन जाता है और हंस: हंस: का अजपा जप करता है।

साधारण ध्वनि और अनाहत ध्वनि में अन्तर समझ लेना चाहिए। जो ध्वनि किसी का आश्रय लेकर उठे, उसे आहत ध्वनि कहते हैं, जैसे ढोल और डंके के संयोग से, वेणु और वायु के संयोग से तार के स्पंदन से उत्पन्न शब्द आहत कहलाता है। आहत शब्द में भिन्न-भिन्न प्रकार की अन्य ध्वनियाँ भी मिश्रित रहती हैं। यह शब्द जड़ होता है। अनाहत ध्वनि प्रकाशमय, नित्य उदित, निरपेक्ष, स्वच्छ चैतन्य होती है। यह प्राणमयी चैतन्य शक्ति का घोष है।

कुण्डलाख्या महाशक्ति स्तृतीयाप्युपचर्यते।
ध्वनिरूपां यदा स्फोटस्त्वदष्टाच्छिवविग्रहात्॥62॥
सेसरत्यतियेगेन ध्वनिनापूरयञ्जगत्।
स नादो देव देवेश: प्रोक्तश्चैव सदा शिव:॥63॥

(नेत्रतंत्र, 21 अधिकार)

ओंकार की आरोहण क्रम से बारह कलाएँ हैं। अ, उ, म, बिन्दु, अर्धेन्दु, निरोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना, उन्मना। इन कलाओं में बिन्दु से लेकर समना कला तक अष्ट वर्ग समष्टि नाद कहलाता है। ये सब ध्वनियाँ हैं और उत्तरोत्तर सूक्ष्म होती जाती हैं। उन्मना नाम की शिवरूपिणी परम सूक्ष्म शक्ति है। यह अपने स्वरूप को छिपाने के खेल की इच्छा से व्योम रूप होकर समना नाम से स्फुरित होती है। इससे शून्य नामक व्यापिनी शक्ति उदित होती है। व्यापिनी से भुजगाकार कुण्डली नाम की महाशक्ति का जन्म होता है। इसके अनन्तर निराकार दृष्ट रूप परनादात्मक–प्रकाशानन्दघन शिव से स्फोटात्मक शब्द ब्रह्म अपनी ध्वनि से सारे जगत को पूरित करता हुआ अत्यन्त वेग से फैलता है। इस नाद को देवों का स्वामी सदाशिव कहा जाता है। यह परावाक् वाणी रूप उन्मना ही है। यही नाद आगे जाकर पश्यन्ती, मध्यमा, बैखरी वाणी के रूप में पलट जाता है।

हंस, प्राण साधना से नाद सुनाई पड़ने लगता है जिसमें मन लग जाता है। अन्त में प्राण सहित मन नाद में लय हो जाता है, और नाद चेतन शक्ति में। नाद श्रवण के लिए हठयोग में कई उपाय बताये हैं, क्योंकि नादानुसंधान को समाधि का अनन्य साधन माना है। हंसोपनिषद् में कुण्डलिनी जगा कर नाद की अनुभूति का उपाय बताया है। '**अथोनाद आधारत् ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्तं शुद्ध स्फटिक संकाशं स वै ब्रह्म परमात्मा इति उच्यते।**' कुण्डलिनी उत्थापन से नाद की अनुभूति होती है। नाद कुण्डलिनी शक्ति से उत्पन्न मूलाधार से उठ कर सहस्रार चक्र तक जाता है। शुद्ध नाद यानी दशवें नाद का वर्ण स्वच्छ स्फटिक मणि के सदृश होता है। दशम नाद ही ब्रह्म परमात्मा कहा जाता है। हंसोपनिषद् आगे लिखते हैं, '**स एष जप कोटया–नादमनुभवति एवं सर्व हंसवशात् नादो दशविधो जायते।**' वह हर हंस जापी हंस मंत्र के जपकोटि पर पहुँचने से, यानी जब जप बहुत सूक्ष्म हो जाता है तो ध्यान में परिणत हो जाता है और नाद का अनुभव होता है। यहाँ कोटि का अर्थ करोड़ नहीं है अपितु उच्च श्रेणी है। इस प्रकार यह सब यानी ध्यान योग भी हंस साधना के प्रभाव से प्राप्त होता है। यह नाद दश प्रकार का होता है। दश नादों का विधान हंसोपनिषद् में दिया है। दशवें नाद यानी मेघनाद का अभ्यास करना चाहिए।

लयावस्था कठिन उपलब्धि है। महान् पुण्य के उदय हुए बिना लयावस्था अथवा ध्यान स्थिति प्राप्त नहीं होती, तो भी हंसयोग की साधना से लयस्थिति सिद्ध हो जाती है। इसी को योगियों की संप्रज्ञात समाधि कहते हैं।

दुःखाढ्यं च दुराराध्यं दुष्प्रेक्ष्यं च दुराश्रयम्।
दुर्लभं दुस्तरं ध्यानं मुनीनां च मनीषिणाम्।।2।।

(तेजोबिन्दूपनिषद्)

ध्यान वृत्ति कष्ट साध्य है, इसका स्वायत्त करना कठिन है, ध्यानावस्था में ज्योति का

दर्शन कठिन है, इसका आश्रय कठिन है, इसकी प्राप्ति दुर्लभ है, बाह्य जागतिक आसक्तियों को पार करके ध्यान प्राप्ति कठिन है, मननशील व्यक्तियों के लिए भी तथा बुद्धिमानी के लिए भी। ऐसा क्यों है?

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

(गीता)

हे कृष्ण! मन चंचल, इन्द्रियों का मंथन करने वाला, बलवान और जिद्दी है। इसको काबू में लाना वायु को काबू में लाने के सदृश कठिन है। यह महान प्राप्ति भी हंस योग साधक को अनायास ही सिद्ध हो जाती है, क्योंकि हंसयोगी को केवल प्राणगति पर दृष्टि लगानी पड़ती है, करना कुछ नहीं पड़ता। यदि सिद्ध योगी गुरु साधक पर शक्तिपात कर दें, तो लयावस्था बहुत शीघ्र प्राप्त हो जाती है। नादानुभूति न केवल कुण्डलिनी जाग्रत होने पर ही होती है, अपितु प्राणायाम के सर्व नाड़ियों के शुद्ध होने पर भी नाद सुनाई पड़ता है। योग तारावलि में भगवत्पाद कहते हैं –

सरेचपूरैरनिलस्य कुम्भैः – सर्वासु नाडीषु विशोधितासु।
अनाहताख्यो बहुभिः प्रकारैरन्तः प्रवर्तेतसदानिनादः।।3।।

रेचक, पूरक तथा कुंभक प्रणायामों से जब सब वायु वाहिनी नाड़ियाँ मल से शुद्ध हो जाती हैं, तब अनाहत नाम का निनाद बहुत प्रकार से भीतर सुनाई पड़ता है। नाद में चित्त रमण करता है। प्रबोध सुधाकर में भगवत्पाद लिखते हैं –

भेरीमृदंगशंखाद्याऽऽहत नादे मनः क्षणं रमते।
किं पुनरनाहतेऽस्मिन्मधुम धुरेऽखण्डिते स्वच्छे।।146।।

भेरी, मृदङ्ग, शंखादि यन्त्रों से उत्थित आहत नाद में जब मन तत्क्षण रमण करता है तो फिर अनाहत नाद में जो कि मधु–सा मीठा (अतिकर्णप्रिय) निरन्तर बहने वाला तथा शुद्ध है, मन क्यों न रमण करेगा अर्थात् वहाँ तो चिपक ही बैठेगा। चित्त जब विषयों से उपरत होता है तो भी नाद श्रवण होता है, यथा –

चित्तं विषयोपरमाद्यदा यथायाति नैश्चल्यम्।
वेणोरिव दीर्घतरः तथा श्रूयते नादः।।147।।

ज्यों–ज्यों चित्त विषयों से उपरत होता जायेगा, त्यों–त्यों निश्चल होता जायेगा, और वैसे ही फिर वंशी के नाद की भाँति दीर्घनाद सुनाई पड़ेगा, यानी सूक्ष्म से सूक्ष्मतर नाद सुनाई पड़ेगा।

नादाभ्यन्तर्वर्ति ज्योति यद्वर्तते हि चिरम्।
तत्र मनो लीनं चेन्न पुनः संसारबन्धाय।।148।।

परमानन्दानुभवात्सुचिरं नादानुसन्धानात्।
श्रेष्ठश्चित्तलयोऽयं सत्स्वन्यलयेष्वनेकेषु।।149।।

नाद के भीतर जो ज्योति निवास करती है वहाँ यदि मन चिरकाल तक विद्यमान रहे और लीन हो जाये तो फिर उसको संसार बन्धन में नहीं रहना पड़ता। क्योंकि नादानुसंधान के माध्यम से वह चित्त परमानन्द की अनुभूति करता है। नाना प्रकार के फलदायी लय -विधानों में चित्त लय के लिए नादानुसंधान श्रेष्ठ उपाय है। ।।148–149।।

न केवल नाड़ी शोधन से ही नाद सुनाई पड़ता है, वरन् आत्म चिन्तन से भी नाद सुनाई पड़ता है। प्रबोध सुधाकर में भगवत्पाद लिखते हैं –

यावत्क्षणं क्षणार्धं स्वरूपपरिचिन्तनं क्रियते।
तावद्दक्षिणकर्णे त्वनाहतः श्रूयते शब्दः।।144।।

जिस क्षण भी यदि कोई अपने स्वरूप अर्थात् आत्मा का सम्यक् चिन्तन आधे क्षण भी करता है उसी क्षण दक्षिण कर्ण में अनाहत शब्द सुनाई पड़ता है।

अब नाद श्रवण की अवधि बताते हैं। शब्द आकाश का गुण है, जब तक आकाश की भावना बनी रहेगी तब तक शब्द सुनाई पड़ेगा।

तावदाकाशसंकल्पो यावच्छब्दः प्रवर्तते।
निःशब्दं तत्परं ब्रह्म परमात्मेति गीयते।।101।।
यत्किंचिन्नादरूपेण श्रूयते शक्तिरेव सा।
यस्तत्त्वांतो निराकारः स एव परमेश्वरः।।102।।

जब तक अनाहत शब्द का श्रवण होता है तब तक आकाश तत्व में मन का अवस्थान रहेगा, क्योंकि शब्द आकाश का धर्म है। नाद का अन्त होने पर यानी निःशब्द अवस्था को ब्रह्म परमात्मा कहा जाता है। उसमें नाद मन सहित लय हो जाता है। जो भी शब्द नाद रूप से श्रवण होता है, वह शक्ति ही है, जिसमें समस्त तत्वों का लय हो जाता है वह ही निराकार परमेश्वर है। सर्व वृत्तियों के क्षीण होने पर स्वरूप में अवस्थान ही परम लक्ष्य है।

अब प्राणायाम द्वारा नाड़ी–शोधन की कष्ट साध्यता बताते हैं। जब तक सुषुम्ना नाड़ी में मल रहेगा तब तक उसमें से प्राण संचार नहीं हो सकेगा। प्राणायाम द्वारा नाड़ी शोधन होने पर नाद सुनाई पड़ेगा। हठयोग प्रदीपिका में लिखते हैं –

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलम् भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्।।2/2।।
मलाकुलासु नाडीषु मारुतो नैव मध्यगः।
कथं स्यादुन्मनीभावः कार्यसिद्धिः कथं भवेत्।।2/4।।

प्राणायामं ततः कुर्यान्नित्यं सात्विकयाधिया।
यथा सुषुम्नानाड़ीस्था मलाः शुद्धिं प्रयांति च।। 2/6।।
यदा तु नाड़ीशुद्धिः स्यात्तथा चिन्हानि बाह्यतः।
कायस्य कृशता कान्तिस्तदा जायते निश्चितम्।। 2/19।।
यथेष्टधारणं वायोर नलस्य प्रदीपनम्।
नादाभिव्यक्तिरारोग्यं जायते नाड़ी शोधनात्।। 2/20।।

(हठयोग प्रदीपिका)

प्राण चलायमान होने से चित्त चलायमान होता है, प्राण निश्चल होने पर मन भी निश्चल हो जाता है। मन स्थिर होने पर योगी स्थाणु की भाँति स्थिर हो जाता है। इसलिए प्राण जय करना चाहिए। नाड़ियों में मल भरने से प्राण सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश नहीं पा सकता, तब किस प्रकार उन्मनी अवस्था प्राप्त होगी, और कार्य सिद्धि (जीवन्मुक्ति) होगी? इसलिए सुषुम्ना में प्रविष्ट मल परिशोधन के लिए शुद्ध बुद्धि से प्राणायाम नित्य करना चाहिए। नाड़ी शुद्धि के चिन्ह बताते हैं – शरीर का पतला और चमकदार होना, प्राणायाम से जठराग्नि का प्रदीपन, नाद का आविर्भाव तथा आरोग्यता प्राप्ति।

प्राणायाम से नाड़ी शोधन कष्टसाध्य है। इसके लिए तीन महीने तक अस्सी–अस्सी प्राणायाम प्रातः, मध्यान्ह, सायंकाल तथा अर्धरात्रि में (यानी 320 प्राणायाम) नित्य करने होंगे। साधारणतः इसमें सात–आठ घण्टे लगते हैं। फिर घी दूध का भोजन चाहिए। परंतु हठयोग की साधना से नाड़ी अनायास ही शुद्ध हो जाती है और नाद श्रवण गोचर होता है। हठ योगी भी साधारण से प्राणायाम का आश्रय ले सकता है। नादबिन्दूपनिषद् में लिखा है –

यत्र कुत्रापि वा नादे लगति प्रथमं मनः।
तत्रैव सुस्थिरीभूय तेन सार्धं विलीयते।। 38।।
मकरन्दपिबन्भृंगो गन्धान्नापेक्षते यथा।
नादासक्तं तथा चित्तं विषयं न हि कांक्षति।। 42।।
नादश्रवणतः क्षिप्रमन्त–रंग–भुजंगमः।
विस्मृत्य विश्वमेकाग्रः कुत्र चिन्नहि धावति।। 43।।
मनोमत्त गजेन्द्रस्य विषयोद्यान चारिणः।
नियंत्रणे समर्थोऽयं निनादनिशितांकुशः।। 44।।

जहाँ भी सूक्ष्म अथवा सूक्ष्मतर नाद में जब मन लग जाता है तो वहीं स्थिर होकर उसी के साथ लय हो जाता है। जैसे पुष्प के रस को पीता हुआ भंवरा गन्ध की अपेक्षा नहीं करता, उसी प्रकार नाद में आसक्त हुआ चित्त विषयों की इच्छा नहीं करता। अनाहत नाद के श्रवण से

शीघ्र ही मन रूपी सर्प सर्व विश्व का विस्मरण करके एकाग्र हुआ किसी विषय की ओर नहीं दौड़ता। मन रूपी मस्त हाथी को, जो कि विषय रूपी बगीचे में भ्रमण करता है, रोकने में नाद रूपी तीक्ष्ण अंकुश समर्थ है।

नाद श्रवण हंसजापी के साधना-पथ में ही आता है उसका आश्रय लेकर परम गति को प्राप्त होता है। हठ योग में नादानुसंधान को लय का मुख्य साधन कहा है। नादानुसन्धान को अपनाने वाले योगियों की आरंभ, घट, परिचय तथा निष्पत्ति चार अवस्थायें कही हैं। पहली तीन अवस्थाओं में ब्रह्म ग्रंथि, विष्णु ग्रंथि, रुद्र ग्रंथि भेदन होती है। निष्पत्ति अवस्था सिद्धावस्था कही गई है। इस पर अधिक कहना अनावश्यक है, क्योंकि हमारा विषय हंसोपनिषद् है।

अब नाद के भेदों पर कुछ कहते हैं। हंसोपनिषद् में नाद के दश भेद कहे हैं- 1. चिणि, 2. चिञ्चिणी, 3. घंटानिनाद, 4. शंखनाद, 5. तन्त्रीनाद, 6. तालनाद, 7. वेणुनाद, 8. मृदंग नाद, 9. भेरीनाद, 10. मेघनाद। ये उत्तरोत्तर अधिक सूक्ष्म हैं। प्रथम 9 नादों को त्याग कर दशवें मेघनाद के श्रवण का अभ्यास करें।

'तस्मिन् मनो विलीयते'। उसमें मन लय हो जाता है। ये ध्वनियाँ नादानुसारी हैं क्योंकि ध्वनियाँ अस्पष्ट होती हैं और उनकी सही अभिव्यक्ति शब्दों में नहीं की जा सकती।

स्वच्छन्द तन्त्र में कहा है कि नाद, जोकि स्वयं अव्यक्त और ध्वनि रूप है, आठ भेदों में व्यक्त होता है ऐसा कहा गया है –

अष्टधा स तु देवेशि व्यक्त: शब्द प्रभेदत:।
घोषो राव: स्वन: शब्द: स्फोटाख्यो ध्वनिरेवच।।6।।
झांकारोध्वङकृतश्चैव अष्टौ शब्दा: प्रकीर्तिता:।

हे देवताओं की स्वामिनि! नाद के आठ व्यक्त भेद हैं – घोष, राव, स्वन, शब्द, स्फोट, ध्वनि झांकार तथा ध्वङ्कृति (मेघध्वनि)। ये आठ प्रकार के नाद उस नवम महानाद के भेदमात्र हैं जो सर्वत्र व्यापक रूप से विद्यमान है।

नादानुसन्धान स्थूल बुद्धि वालों के लिए भी एक स्वतन्त्र साधन है –

अशक्य-तत्त्वबोधाना मूढ़ानामपि संमतम्।
प्रोक्तं गोरक्षनाथेन नादोपासनमुच्यते।।

मूढ़ बुद्धि होने के कारण जो ब्रह्म विचार में असमर्थ हैं, उनके लिए भी गुरु गोरखनाथ ने नादानुसन्धान अनुकूल साधन कहा है। फिर विद्वानों के लिए तो कहना ही क्या है। अत: नाद की उपासना (अनाहत ध्वनि की साधना) कही जाती है।

चन्द्रकापालिक द्वारा पूछा जाने पर योगेश्वर घेरण्ड ने घेरण्ड संहिता नामक ग्रन्थ के पाँचवें उपदेश में नाद श्रवण विधि, नाद भेद तथा नादानुसंधान का फल बताया है। उसी ग्रन्थ

से उद्धृत करके लिखते हैं—

अर्धरात्रिगते योगी जन्तूनां शब्द वर्जिते।

कर्णौ पिधाय हस्ताभ्यां कुर्यात् पूरक–कुम्भकम्।। 77।।

श्रृणुयाद् दक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं शुभम्।

प्रथमं झिंझानादं च वंशी नाद ततः परम्।। 78।।

मेघ–झर्झर–भ्रमरी घंटाकास्यं ततः परम्।

तुरी–भेरी–मृदंगादि–निनादानक–दुन्दुभिः।। 79।।

एवं नानाविधं नादं जायते नित्यमभ्यसात्।

अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः।। 80।।

ध्वने–रन्तर्गत–ज्योति ज्योतिरन्तर्गतं मनः।

तन्मनो विलयं याति तद् विष्णोः परमं पदम्।। 81।।

अर्थ— आधी रात बीतने पर जब किसी जन्तु का शब्द सुनाई न दे, उस काल एकान्त स्थान में योगी अपने दोनों हाथों से दोनों कानों को बन्द करके पूरक–कुम्भक का अनुष्ठान करे। ऐसा करने पर योगी दाहिने कान में नाना प्रकार के शुभ भीतर के नादों को श्रवण करे। अब नाद की भिन्न–भिन्न ध्वनियाँ बताते हैं। पहले झींगुर के शब्द जैसी ध्वनि, फिर बंसी जैसी ध्वनि, फिर मेघ, झर्झर बाजे की ध्वनि, फिर भौंरे के गुंजार जैसी ध्वनि फिर कांसे के पात्र, तुरही, भेरी, मृदंग आदि के शब्द, आनक (नोबत बाजा) दुन्दुभि के नाद जैसा शब्द सुनाई पड़ता है। इस प्रकार नानाविधि नाद नित्य अभ्यास से सुनाई पड़ते हैं। अब नाद का रहस्य खोलते हैं। अनाहत शब्द की जो ध्वनि है, उस ध्वनि के भीतर एक मोहक प्रकाश होता है, उस ज्योति के भीतर प्रविष्ट मन लय को प्राप्त होता है, वही ज्योति ही विष्णु (आत्मा) का परम पद धाम है।

नादबिन्दूपनिषद् में प्रणव से नाद की उत्पत्ति बताई है। प्रणव दो प्रकार का होता है। पर–प्रणव, परब्रह्म तथा अपर–प्रणव, अपर ब्रह्म यानी शब्द ब्रह्म। पहले बता चुके हैं कि प्रणव और कुण्डलिनी और शक्ति एक ही वस्तु के नाम हैं, इसे परा वाणी भी कहते हैं। ब्रह्म प्रणव शब्दातीत है, अपरब्रह्म प्रणव शब्द–ब्रह्म है।

ब्रह्म प्रणव संधानं नादो ज्योतिर्मयः शिवः।

स्वयमाविर्भवेदात्मा मेघापायेऽशुमानिव।। 30।।

सिद्धासने स्थितो योगी मुद्रां संधाय वैष्णवीम्।

श्रृणुयाद्–दक्षिणेकर्णे नादमन्तर्गतं सदा।। 31।।

अभ्यस्यमानो नादोऽयं ब्रह्मामावृणुते ध्वनिः।

पक्षाद्विपक्षमखिलं जित्वा तुर्यं पदं व्रजेत्।।32।।

श्रूयते प्रथमाभ्यासे नादो नानाविधो महान्।

वर्धमाने तथाभ्यासे श्रूयते सूक्ष्म–सूक्ष्मतः ।।33।।

आदौ जलधि–जीमूत भेरी–निर्झरसंभवः।

मध्ये मर्दलशब्दाभो घंटा–काहलजस्तथा।।34।।

अन्ते तु किंकणी–वंश–वीणा–भ्रमरनिःस्वनः।

इति नानाविधा नादाः श्रूयन्ते सूक्ष्मसूक्ष्मतः।।35।।

अर्थ– नाद में दो अंश विद्यमान होते हैं – एक अंश ध्वनि और एक अंश प्रकाश। उसमें प्रकाशांश तो स्वयं आत्मा है और ध्वनि उसका आवरण, आच्छादक उपाधि है। ब्रह्मरूप प्रणव का ध्यान करना चाहिए। इससे नादरूप ज्योतिर्मय सदा शिव भगवान जो कि स्वयं अपनी आत्मा है, का प्राकट्य होगा। कब? जैसे बादल हटने पर महाप्रकाशमान सूर्य का दर्शन होता है, वैसे ही आकाशतत्व समद्भूत शब्द से उपहित नाद में से शब्दांश दूर होने पर ज्योतिर्मय रूप परमात्मा प्रकट होता है। इसकी साधना किस प्रकार होती है? सिद्धासन पर बैठ कर योगी वैष्णवी मुद्रा (हाथों से कानों को बन्द करना) जमा ले और दक्षिण कर्ण में भीतर के नाद को सुने (बाहर के शब्द को न सुने)। अभ्यास किया हुआ यह नाद ब्रह्म का वरण कर लेगा। एक दो पक्ष में ही ध्वन्यंश को जीत कर योगी, तुर्यपद, लय को प्राप्त होगा। अभ्यास के आरम्भ में नाना प्रकार का महान् यानी स्थूलनाद सुनाई पड़ता है। इसके पश्चात् अभ्यास के बढ़ जाने पर सूक्ष्म और अति सूक्ष्म नाद सुनाई पड़ता है। आरम्भ में समुद्र की गर्जना, बादल की गर्जना, भेरी और निर्झर बाजे से उत्पन्न शब्द की भाँति नाद सुनाई पड़ता है। इसके पश्चात् श्रवण वृत्ति सूक्ष्म होकर सूक्ष्म नाद का श्रवण करती है। मर्दल (एक प्रकार का ढोल) के शब्द की भाँति, घण्टा, काहल (झांझ) की ध्वनि के सदृश सूक्ष्म नादों की ध्वनि होती है। अन्त में सूक्ष्मतर नाद यथा क्षुद्रघंटिकाओं, वंशी, वीणा, भ्रमर की गुनगुन ध्वनि के सदृश सूक्ष्मतर ध्वनि को सुनता है। (चूँकि नाद की ध्वनि अस्पष्ट होती है अतः भिन्न–भिन्न आचार्यों ने अपने–अपने अनुभव के आधार पर ध्वनि अनुसारी भिन्न–भिन्न शब्दों से दृष्टान्त दिये हैं)।

इस भाँति नाना प्रकार के सूक्ष्म अति सूक्ष्म नाद सुनाई पड़ते हैं। परन्तु यह नाद सूक्ष्म होते–होते अन्त में निःशब्द होकर ज्योतिरूप हो जाता है। मन और प्राण दोनों का ही लय हो जाता है।

जहाँ तक नाद है, वहीं तक आकाश है, वहीं तक शब्द है। जहाँ नाद का अन्त है, वहीं आकाश का अन्त है और वहीं शब्द का। परमात्मा निःशब्द पद है, वही उन्मनी अवस्था है।

सशब्दश्चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।

सदानादानुसंधानात्संक्षीणा वासना तु या।।49।।

निरञ्जने विलीयेते मनोवायू न संशयः।

नाद कोटि सहस्राणि बिन्दु कोटि शतानि च ।।50।।

सर्वे तत्र लयं यान्ति ब्रह्मप्रणवनादने।

सर्वावस्था–विनिर्मुक्तः सर्व चिन्ता विवर्जितः।।51।।

अर्थ– अक्षर शब्द ब्रह्म के क्षीण होने पर निःशब्द यानी मौन परमात्मा पद प्राप्त होता है। चित्त में विक्षेप उत्पन्न करने वाली वासना नाद के निरंतर अभ्यास से क्षीण हो जाती है, वासना के अभाव में अतरंगित मन नादान्तर्गत ज्योति में लय हो जाता है। सर्वोपाधिरहित निरंजन निर्गुण निःशब्द ब्रह्म में मन और वायु (प्राण) दोनों ही लय हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं करना न केवल मन और प्राण ही लय होते हैं, अपितु करोड़ों सहस्र प्रकार के घनघोर नाद और करोड़ों शत प्रकार के बिन्दु भी निःशब्द पद में लय हो जाते हैं। योगी उस स्थिति को पाकर सब अवस्थाओं – जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति से मुक्त और सब चिन्ताओं से रहित हो जाता है।

दृष्टिः स्थिराः यस्य विना सदृश्यम्, वायुः स्थिरो यस्य विना प्रयत्नम्।

चित्तं स्थिरं यस्य विनाऽवलम्बम्, स ब्रह्म तारान्तरनाद रूपः।।56।।

(नादबिन्दूपनिषद)

जिस योगी की दृष्टि बिना आकार का आश्रय लिए ही स्थिर है, जिसका प्राण बिना प्रयत्न के ही स्थिर है, जिसका चित्त बिना आधार के ही स्थिर है, वह साक्षात् तारक ब्रह्म अन्तरनाद रूप ही है। श्री विज्ञान भैरव ग्रंथ में भी नादानुसंधान से परब्रह्म की प्राप्ति कही है। भगवान् भैरव की वाणी भी अनोखी ही है–

अनाहते पात्रकर्णे– भग्नशब्दे सरिद्–द्रुते।

शब्दब्रह्मणि निष्णातः परंब्रह्माधिगच्छति।।38।।

अर्थ– कर्ण ही जिसको धारण करने वाला पात्र है अर्थात् कानों में सुनाई देने वाला (बाहर सुनाई न देने वाला) अनाहत शब्द, यानी नित्य उदित नाद, नदी के प्रवाह की भाँति द्रुतगामी तथा अखण्डित, विच्छेद रहित गति से प्रवाहित होता रहता है। इसी को शब्दब्रह्म कहते हैं। शब्द ब्रह्म में प्रवीण यानि ब्रह्म को पार करने वाला ही निःशब्द परम ब्रह्म को प्राप्त करता है। शब्द जाल से अविमुक्त परम ब्रह्म को नहीं पा सकता।

हंस योग की महिमा आपको अवगत हो गई होगी। इससे प्राणायाम की सिद्धि, नाड़ियों का शोधन, कुण्डलिनी जागरण, आरोग्यता, देह कान्ति, लय तथा जीवन्मुक्ति सभी कुछ प्राप्त होते हैं।

–क्रमशः

नववर्ष का मंगलमय आवाह्न

द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

नववर्ष 2010 के प्रथम दिवसागम के उपलक्ष्य में त्रिभाषा-रचित (संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिन्दी में) पद्यात्मिका स्व रचनायें।

(संस्कृत भाषायाम्)

आयाहि परिपाहि विधेहि सर्व, भवेद्यतः सार्वजनीनमृद्धि।
प्रतीक्षमाणाः स्म वयम् त्वमेव, अतः स्वागतं ते नवमागते दिने।।

(1)

क्षणं मुहूर्त्तं दिवसोऽथ रात्रिः पक्षश्च मासोऽप्ययने तथा द्वे।
समेत्य सर्वान् पुनरागमत् कः नवाङ्कमुत्सार्य दशाङ्कवर्षः।।

(2)

आगम्यमानस्य विशिष्ट व्यक्तेः सत्कार सेवाऽभ्यर्थनं विदध्मः।
स्वकीय सदनं विविधोपसज्जैः सुशोभनं चारुतरं च कुर्मः।।

(3)

कथं न वर्षस्य नवोदिते दिने करवाम तत्स्वागतमद्यतस्ततः।
आरभ्य क्षणतोऽप्ययने समाप्तौ स सम्राट् समग्रस्य समयस्य सम्यक्।।

(4)

आशास्महे नूनमतीव नूत्नं समानयेन्नव्य नवोपहारम्।
ऋद्धिं समृद्धिं प्रददेच्च हर्षं कल्याण कृन्नश्च नवीन वर्षः।।

(5)

समीचीनमुक्तं बहुधोक्तसूक्तं यथा चिन्त्यते तेन तथैव भूयते।
अतएव याचे भवते भवेशात् यच्चिन्तितं तत् परिपूर्णतां व्रजेत्।।

(This is in Hindi Verse of Sanskrit Verses)

हिन्दी भाषा

(1)

क्षणों, मुहूर्त्तों, दिनों–रात्रियों को, पर्वों व मासों तथा दो अयन को।
समेटे स्वयं में भला कौन फिर यह, दशम अङ्क आया पुराना हटा नौ।।

(2)

विशिष्ट अभ्यागत आगमन पर, सत्कार–सेवा करते सदा हम।
भवनादि को भी करते सुसज्जित, सब भाँति सुन्दर बनाते हैं उत्तम।।

(3)

तब क्यों न नववर्ष के नव दिवस का, स्वागत शुभागम नहीं हम करेंगे।
क्षण क्षण शुरू हो अयनान्त तक जो, सम्राट–समय संग प्रमुदित रहेंगे।।

(4)

आशा संजोये नववर्ष में हम, हमारे लिए कुछ नया बन नया कुछ।
धनागम करे या खुशियाँ नवाजे, नया वर्ष कल्याण कर जाय सचमुच।।

(5)

कितना सही "सूक्त" कहा गया है, सोचोगे जैसा बनोगे भी वैसा।
भवेश से याचना यह है मेरी, हो पूर्ण सोचें यदा आप जैसा।।

May the New Year be a Blissful One
(This is in English Verse of Sanskrit Verse)

(1)

The moments, Muhurtas, days and the nights,
The fortnights, the months and the Ayanas two.
Enveloping these all and leaving behind the year nine,
Dominating the place with Ten comes forward who?

(2)

For an incoming prominent person to our house,
We pay homage and tributes befitting his personality.
Also we take pains to decorate it suitarbly,
To give a finer look with all our agility.

(3)

Why not then on the New Year's Novel First Day,
Should we exercise for its welcoming reception.
Beginning right from the moments and ending with the Ayanas,
Behoves Him to be an Emperor of the times in action,

(4)

Hopefully we aspire the New year's adoent,
May bestow upon us some new gifts,
May it also proffer prosperity with joy,
And the welfare too bereft of all rifts

(5)

Often spoken is a beautiful maxim,
As one thinks so becomes he.
I beseech for you from the Lord Shiva,
May your wish be fulfilled what you think to be.

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था...

- हमें जो कुछ चाहिए वह श्रद्धा ही है। दुर्भाग्यवश भारत से इसका प्राय: लोप हो गया है और हमारी वर्तमान दुर्दशा का कारण भी यही है। यह श्रद्धा ही है, जो एक मनुष्य को बड़ा और दूसरे को दुर्बल और छोटा बना देती है।

- अपने जीवन में मैंने जो एक श्रेष्ठतम पाठ पढ़ा, वह यह कि किसी भी कार्य के साधनों के विषय में उतना ही सावधान रहना चाहिए, जितना कि उसके लक्ष्य के विषय में। ...इस एक तत्व से सर्वदा बड़े-बड़े पाठ सीखता आया हूँ और मेरा यह मत है कि सब प्रकार की सफलताओं की कुंजी इसी तत्व में है – साधनों की ओर भी उतना ही ध्यान देना आवश्यक है, जितना कि साध्य की ओर।

- अरे, मृत्यु जब अवश्यम्भावी है, तो कीट-पतंगों की तरह मरने के बजाय वीर की तरह मरना अच्छा है। इस अनित्य संसार में दो दिन अधिक जीवित रहकर भी क्या लाभ? जराजीर्ण होकर थोड़ा-थोड़ा करके क्षीण होते हुए मरने के बजाय वीर की तरह दूसरों के अल्प कल्याण के लिए भी लड़कर उसी समय मर जाना क्या अच्छा नहीं है?

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

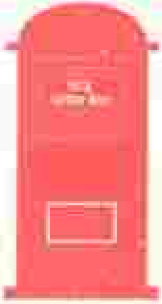

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

<u>विभिन्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा</u>

1. डाक वस्तुओं पर प्रेस आयान (स्थान प्रचार) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप)
3. पेस्ट वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेन्टिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 9.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर फ्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के गर्मी पर स्टाम्प वीडियोग्राफ की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु. 600/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर छपाई का विज्ञापन । दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11

January 2010

सिद्धयोग

श्रीसिद्धयोग प्रशिक्षण केन्द्र

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) रासलाल शर्मा